आई.एस.एस.एन. 2230—7044 पुलिस विज्ञान

वर्ष - 33 अंक 133 अक्टूबर-दिसंबर, 2015

वर्ष - 33 अंक 133 अक्टूबर-दिसंबर, 2015

पुलिस विज्ञान

(त्रैमासिक पत्रिका)
अक्टूबर-दिसंबर, 2015

सलाहकार समिति

नवनीत राजन वासन
महानिदेशक

आर.के. किणि ए.
विशेष महानिदेशक

डा. निर्मल कुमार आजाद
महानिरीक्षक (प्रशा.)

सुनील कपूर
उप महानिरीक्षक (एस. एंड पी.)

संपादक : **दिवाकर शर्मा**

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
ब्लाक-11, 3 एवं 4 मंजिल
सी.जी.ओ. काम्पलैक्स, लोदी रोड
नई दिल्ली-110003

'पुलिस विज्ञान' में प्रकाशित लेखों में लेखकों के विचार निजी हैं। इनसे पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली की सहमति आवश्यक नहीं।

संपादकीय

पुलिस विज्ञान त्रैमासिक पत्रिका का अक्टूबर-दिसंबर, 2015 का अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। जैसा कि संपादक मंडल का यह प्रयास रहता है कि पत्रिका में पुलिस, न्यायालयिक विज्ञान व अन्य संबंधित विषयों की प्रामाणिक व प्रासंगिक जानकारी प्रदान की जाए। अतः अपराधों को सुलझाने में पुलिसकर्मियों द्वारा किस प्रकार की कार्यप्रणाली अपनाई जाए, अपराधों से निपटने तथा अपराध होने की संभावनाओं से संबंधित कुछ ओजस्वी विचार तथा प्रेस की भूमिका पर वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों तथा समाज के कुछ प्रबुद्ध वर्ग द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं जो आम पुलिसकर्मी के साथ सभी वर्ग के लिए उपयोगी होते हैं।

इस अंक में इस बार पुलिसकर्मियों के लिए **खाकी के दर्द का हमदर्द कौन? एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण; संतान का लोभ और किराए की कोख; चौकीदार : सुरक्षा में कितना भागीदार; आय से अधिक संपत्ति अर्जित करने से संबंधित विधान एवं अनुसंधान; 'हिम्मत ऐप' देगा हिम्मत; आत्महत्या के सामाजिक प्रभाव पर एक शोधपरक दृष्टि; भारत में यौन हिंसा : आखिर कब तक?** तथा **स्वापक औषधि एवं मनःप्रभावी द्रव्य तस्करों का पी.आई.टी.एन.डी.पी.एस. अधिनियम 1988 के तहत निवारक अवरोध (डिटेंसन)** से संबंधित लेख हैं। पत्रिका के सुधी पाठक पत्रिका को और अधिक सूचनाप्रद व उपयोगी बनाने में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकते हैं। आशा है कि पत्रिका में सम्मिलित सभी लेख पाठकों को उपयोगी लगेंगे और वे अपने विचारों से संपादक मंडल को अवगत कराते रहेंगे। आपके विचारों का सहर्ष स्वागत है।

दिवाकर शर्मा
संपादक

वर्ष - 33 अंक 133 अक्टूबर-दिसंबर, 2015

समीक्षा समिति के सदस्य

प्रो. एम.जैड. खान, नई दिल्ली
श्री एस.वी.एम. त्रिपाठी, लखनऊ
प्रो. अरुणा भारद्वाज, नई दिल्ली
प्रो. जे.डी. शर्मा, सागर (म.प्र.)
प्रो. स्नेहलता टंडन, नई दिल्ली
डा. दीप्ति श्रीवास्तव, भोपाल
प्रो. वी.के. कपूर, जम्मू
डा. शैलेंद्र कुमार चतुर्वेदी, मेरठ
डा. अरविंद तिवारी, मुंबई
डा. उपनीत लल्ली, चंडीगढ़
श्री वी.वी. सरदाना, फरीदाबाद
श्री सुनील कुमार गुप्ता, नई दिल्ली

अनुक्रम

खाकी के दर्द का हमदर्द कौन? एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण
- *प्रोफेसर ए.एल. श्रीवास्तव* ---------- *7*

संतान का लोभ और किराए की कोख
- *अरुण कुमार पाठक* ---------- *11*

चौकीदार : सुरक्षा में कितना भागीदार
- *आशीष जायसवाल* ---------- *23*

आय से अधिक संपत्ति अर्जित करने से संबंधित विधान एवं अनुसंधान
- *कैलाश नाथ गुप्त* ---------- *33*

'हिम्मत ऐप' देगा हिम्मत
- *वीणा पाठक* ---------- *39*

आत्महत्या के सामाजिक प्रभाव पर एक शोधपरक दृष्टि
- *डा. श्रीराम आर्य*---------- *41*

भारत में यौन हिंसा : आखिर कब तक?
- *डा. मेनका* ---------- *47*

स्वापक औषधि एवं मनःप्रभावी द्रव्य तस्करों का पी.आई.टी एन.डी.पी.एस. अधिनियम 1988 के तहत निवारक अवरोध (डिटेंसन)
- *प्रदीप कुमार शर्मा*---------- *52*

'पुलिस विज्ञान' में प्रकाशित लेखों में लेखकों के विचार निजी हैं। इनसे पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली की सहमति आवश्यक नहीं।

कवर डिजायन : राहुल कुमार

अक्षरांकन एवं पृष्ठ सज्जा : ओम प्रकाशन, डी-46, विवेक विहार (भूतल), दिल्ली-110095

खाकी के दर्द का हमदर्द कौन? एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

प्रोफेसर ए.एल. श्रीवास्तव
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष (से.नि.)
बी-22/159-ए1, शंकुलधारा विद्युत उपकेंद्र के सामने
शंकुलधारा, वाराणसी-221010

किसी भी समाज की व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए पुलिस-व्यवस्था को त्वरित रूप से गतिशील होना आवश्यक है। साधारणतया यह अनुमानित है कि सरकारी अभिकरण के रूप में पुलिस राज्य में अपराधों पर अंकुश लगाते हुए शांति व्यवस्था को बनाए रखने में अपना रचनात्मक योगदान प्रदान करे। समाज में यह प्राक्कल्पित है कि अपराधजन्य व्यवहारों पर नियंत्रण शांति व्यवस्था की स्थापना का महत्वपूर्ण सोपान है।

समाज में यह साधारणतया दृष्टिगोचर होता है कि अपराधजन्य व्यवहारों पर नियंत्रण एक अभिकरण के रूप में 'पुलिस' ही उचित ढंग से प्रतिपादित कर सकती है। अपने माध्यम से अपराधियों का दमन करते हुए पुलिस ऐसे सृजनात्मक वातावरण का निर्माण करने का प्रयास करती है जिससे विचलनशील व्यक्ति समाज में अपराध को बढ़ावा देने का साहस न कर सकें। समाज में सामान्य जनों का पुलिस से ऐसी अपेक्षा स्वाभाविक है।

ग्रामीण एवं नगरीय पृष्ठभूमि में नगरीकरण, औद्योगिकीकरण, भूमंडलीकरण के कारण विकास की प्रक्रिया अविरल गति को प्राप्त कर रही है। विकास के परिणामस्वरूप ग्रामीण-नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तन की रूपरेखा स्पष्ट हुई है। त्वरित विकास के साथ-ही-साथ विविध प्रकृति के समस्याओं का सृजन भी हुआ है। इन समस्याओं में निर्धनता, बेरोजगारी, वेश्यावृत्ति, मद्यपान, आत्महत्या, जुआवृत्ति, भिक्षावृत्ति आदि का प्रखर रूप देखने को मिलता है। समस्याओं के विघटित प्रारूप समाज में अव्यवस्था को अस्तित्व में लाने में अपना रचनात्मक योगदान प्रदान करते हैं। अव्यवस्था को दूर करने के लिए 'पुलिस (खाकी वर्दी)' का चित्रकल्प समाज को दृष्टिगोचर होने लगता है। 'खाकी वर्दी' समाज की अपेक्षाओं पर खरी उतरने के लिए अव्यवस्था के विविध पक्षों का समाधान ढूंढ़ने का प्रयास करती है।

समाज की अव्यवस्था अथवा अप्रकार्य की स्थिति विविध प्रकार की चुनौतियों को प्रस्तुत करती है। लोगों में सुरक्षा एवं जान-माल की रक्षा का भय बढ़ता जाता है। असंतोष को प्रस्तुत करते हुए सामान्य जन 'खाकी वर्दी' की असफलता एवं अकर्मण्यता को चुनौती देने लगते हैं। समाज में अपराधजन्य व्यवहार का बोलबाला होने लगता है। जन-समुदाय में पुलिस के प्रति इस प्रत्यक्षीकरण को विशेष बल प्राप्त होता है कि पुलिस अपनी 'नाकामी' पर पर्दा डालने के लिए बेगुनाह एवं निर्दोष लोगों को पकड़कर अपनी कागजी सफलता का डंका बजाने लगती है।

'खाकी वर्दी' से सृजनात्मक समाज व्यवस्था के निर्माण की अपेक्षा वांछनीय है। उससे लक्ष्य उन्मेषित भूमिका के प्रस्तुतीकरण की प्रबल अभिलाषा होती है। परंतु क्या जन-समुदाय खाकी के दर्द को समझने का प्रयास करता है? उत्तर स्पष्ट है 'नहीं'। पुलिस विभाग सरकारी कागजों में अपराधों की कमी को दर्शाकर सरकारी आंकड़ों को आकर्षक बनाने का प्रयास करता है।

'खाकी के दर्द' का समाज व्यवस्था के स्वस्थ निर्माण से धनात्मक संबंध है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि पुलिस व्यवहार एवं उसकी स्वस्थ कार्य-प्रणाली के

प्रति लोगों का सार्थक दृष्टिकोण नहीं है। परंतु क्या कभी यह सोचने का प्रयास किया गया है कि 'खाकी वर्दी' अपने कर्तव्य-पथ से विचलित क्यों होती है? कर्तव्य-पथ से विचलित करने के उत्तरदायी कारक कौन-से हैं?

व्यवस्था परिवर्तन के प्रति दृष्टिकोण : एक दिवा-स्वप्न—खाकी वर्दी की कार्यशैली एवं भूमिका प्रतिपादन पर नौकरशाही विश्लेषण कई व्यवहारपरक मुद्दों को उत्पन्न करता है। अगर इस पक्ष पर सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में विश्लेषण करने का प्रयास किया जाए तो स्पष्ट होता है कि 1861 से एक ही ढर्रे पर चल रही उत्तर प्रदेश पुलिस के विविध पक्षों पर रूपांतरण हेतु गंभीर प्रयास नहीं किया गया। रात-दिन अपनी भूमिका को प्रतिपादित करने की विवशता उसकी मानवीय अनुभूतियों एवं निष्ठा को संक्रमित करने का अनूठा प्रयास करता है। अवकाश में भी उसे अपनी 'ड्यूटी' को सुचारु रूप से प्रतिपादित करना उसके मजबूरी का अच्छा चित्रकल्प है। राज्य कर्मचारी होने के उपरांत भी उसे अन्य राज्यकर्मियों की तरह सुविधा नहीं दी जाती, जिसका वह हकदार है।

लक्ष्य उन्मेषित कार्य करने से व्यक्ति अथवा कार्यरत व्यक्ति को एक अनूठे आनंद की अनुभूति होती है। परंतु संगठनात्मक स्तर पर प्रदत्त असुविधाएं व्यक्ति की सोच एवं व्यक्तित्व के विविध पक्षों पर कुठाराघात करती हैं जिससे कार्यरत व्यक्ति कार्य-संतुष्टि प्राप्त करने में असफल हो जाता है।

खाकी वर्दी धारकों (पुलिस) को अपने दोपहिए वाहन से अपने क्षेत्र में निरंतर चक्रमण करने की कठोरता से अपेक्षा की जाती है। परंतु वाहन के लिए डीजल अथवा पेट्रोल चाहिए। जब गति प्रदान करनेवाले तेल सीमित मात्रा में मिलेंगे एवं अपेक्षा अधिक की होगी तो खाकी वर्दी क्या करेगा? अपराधी एवं उसका गैंग इस प्रकार की कमजोरियों का अच्छा मूल्यांकन करता है और पुलिस को प्रत्येक पल चुनौती देने का मन बनाए रखता है। ऐसी स्थिति में चौकसी एवं शांति व्यवस्था बनाए रखना संभव नहीं है। यह भी अचरज की बात है कि सुविधा के उपकरण अथवा माध्यम की व्यवस्था तो कर दी गई परंतु उससे संबंधित सुविधाओं की व्यवस्था न करने पर कार्यरत व्यक्ति अपने लक्ष्य उन्मेषित कार्यों को उचित ढंग से प्रतिपादित नहीं कर पाता। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सुविधाओं की पर्याप्त उपलब्धता के उपरांत भी व्यक्ति अपने लक्ष्य उन्मेषित कार्यों के प्रति उदासीनता प्रकट करता है और कर्तव्यनिष्ठा को एक कपोलकल्पित आधारशिला बताने का प्रयास करता है।

खाकी वर्दी धारकों (पुलिस) की परिवार संरचना एवं उसकी अपेक्षाओं की भी मार्मिक कहानी है। पुलिस से संबंधित परिवार के सदस्यों की उससे अपेक्षा की संभावना नहीं रहती है। दिन में ड्यूटी तथा रात में पेट्रोलिंग जैसे व्यस्त कार्यों को प्रतिपादित करके उसके पास परिवार के हितों को सोचने एवं समझने का अवसर ही कहां मिलता है? भूमिका-प्रतिपादन के विविध पक्षों से जूझने के कारण वह अपने परिवार की समस्याओं को उचित ढंग से सुलझा नहीं पाता है। प्राथमिक अंतःक्रियाओं से विलगाव के कारण उसके द्वितीयक संबंध भी प्रभावित होते हैं। उसके नौनिहालों का उचित समाजीकरण नहीं हो पाता है। वह भूमिका अपेक्षा एवं भूमिका प्रतिपादन के बीच एक असहाय कार्मिक के रूप में पिसता रहता है। इन विषम स्थितियों के कारण इनसे वैवाहिक संबंधों के ताने-बाने में विविध प्रकार के अवरोधों का प्राबल्य होता है।

अभाव से आच्छादित पुलिस-व्यवस्था : साधारणतया देश, प्रदेश की आंतरिक सुरक्षा की प्राथमिक जिम्मेदारी पुलिस बल की होती है। जन-समुदाय की उनसे महती अपेक्षा भी होती है। यथार्थ के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि पुलिस-बल में बढ़ोत्तरी की बात तो दूर स्वीकृत पद भी पूर्ण रूप से भर नहीं पाए हैं। गृह-मंत्रालय के स्रोतों से उपलब्ध आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अभी भी पंद्रह प्रतिशत

पद रिक्त हैं। रिक्त पदों एवं पर्याप्त आंतरिक सुरक्षा बल के अभाव में राज्यों के संवेदनशील क्षेत्रों में सुरक्षा की समुचित व्यवस्था करने में कठिनाई का अनुभव होता है।

पर्याप्त पुलिस संख्या न होने के कारण भारत विश्व के उन देशों में से है जहां सामान्य नागरिकों की आबादी की तुलना में पुलिसकर्मियों की संख्या सर्वाधिक कम है। पर्याप्त द्वितीयक आंकड़ों के अनुसार भारत में प्रति एक लाख आबादी के लिए औसत रूप में 126 पुलिसकर्मी हैं जबकि संयुक्त राष्ट्र ने प्रति एक लाख की आबादी पर 222 पुलिस जवानों का मानदंड तय किया है। प्रति लाख आबादी पर जापान में 182, कनाडा में 186, स्विटजरलैंड में 204, इंग्लैंड में 258, जर्मन में 303, आस्ट्रेलिया में 304, संयुक्त राज्य अमेरिका में 326, पुर्तगाल में 450, इटली में 559 और कुवैत में 1116 पुलिसकर्मी हैं। पुलिसकर्मियों की तैनाती के अनुपात से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार देश की सरकारें आंतरिक सुरक्षा के लिए कटिबद्ध हैं।

भारत के विविध राज्यों की पुलिस एवं जन-समुदाय के आपसी अनुपात भी चौंकानेवाले हैं। राज्यों के अंतर्गत एक लाख आबादी पर पुलिसकर्मियों की संख्या साधारणतया बिहार में 79, उत्तर प्रदेश में 94, पश्चिमी बंगाल में 96, उड़ीसा में 100, मध्य प्रदेश में 112, आंध्र प्रदेश में 113, राजस्थान में 115, गुजरात में 117, छत्तीसगढ़ में 134, तमिलनाडु में 151 और कर्नाटक में 159 है। प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल व उड़ीसा में प्रति दस हजार जनसंख्या की सुरक्षा की जिम्मेदारी 8 से 10 खाकीवर्दी वालों (पुलिस) पर है।

इसी प्रकार मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, गुजरात व छत्तीगढ़ में 11 से 13 पुलिस वालों पर, तमिलनाडु में 15, कर्नाटक में 16, उत्तराखंड में 19, हरियाणा में 20, दिल्ली में 20, हिमाचल प्रदेश में 23, पंजाब में 27, गोवा में 29, पांडिचेरी में 31, दिल्ली में 38, चंडीगढ़ में 46, लक्षदीप में 53 व जम्मू कश्मीर में 55 है। खाकी वर्दी से सुरक्षा की प्रबल गुहार कैसे पूर्ण हो सकती है जबकि जनसंख्या के प्रचंड बाहुल्य पर उनकी संख्या बहुत ही न्यून है। परिणाम यह होता है कि सुरक्षा के नाम पर खाकी वर्दीधारी कुछ विशेष स्थितियों को छोड़कर बाकी स्थितियों में सिर्फ डंडा पटकते रहते हैं। स्थिति विषम तब हो जाती है जब छुट्टी पर घर जाने के बाद बीच में ही उनकी छुट्टी रोककर उन्हें कुछ विशेष अवसरों पर ड्यूटी देने के लिए बुला लिया जाता है। ऐसी अवांछनीय स्थिति में क्या खाकी वर्दी से तल्लीनता एवं निष्ठा के साथ कर्तव्य पालन की अपेक्षा की जा सकती है।

भारत में लगभग 638653 गांवों के लिए मात्र 12,883 पुलिस थाने हैं। यह भी विचित्र विडंबना है कि अनेक पुलिसकर्मी अति महत्वपूर्ण व्यक्ति (वी.आई.पी) की सुरक्षा व्यवस्था में लगे रहते हैं। वी.आई.पी. सुरक्षा व्यवस्था में प्रति वर्ष अरबों रुपया फूंका जाता है। जन सामान्य के मेहनत के पैसे एवं उनकी ही सुरक्षा से समझौते पर अति महत्वपूर्ण विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा की नींव टिकी रहती है। यहां यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कुछ वी.आई.पी. अपने लिए खतरा स्वयं बढ़ाए हुए हैं तथा उनकी लिए सुरक्षा का मायाजाल एक 'स्टेटस सिंबल' है। सामान्यजन तो इस भ्रांति में रहता है कि जब तक वी.आई.पी. लोग स्टेनगन से न घिरे रहें तब तक उन्हें वी.आई.पी. कहने में संकोच होता है। ऐसी विषम स्थिति में खाकी वर्दी के प्रति विरोधात्मक दृष्टिकोण होना स्वाभाविक है।

विभिन्न राज्यों की सरकारों को केंद्र सरकार की ओर से पुलिस संगठन के आधुनिकीकरण के लिए धन प्राप्त होता है। परंतु विविध विभागों के साथ परिपक्व समन्वय के अभाव के कारण पुलिस के प्रारूप को आधुनिक नहीं बना पाते। परिणामस्वरूप पुलिस विभाग आधुनिकीकरण का ढिंढोरा तो पीटता है परंतु स्वयं बहुत पीछे रहता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि सामान्य

जन का खाकी वर्दी के प्रति अधिक अपेक्षा रखना स्वाभाविक है। परंतु इस पक्ष पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि उनके वैयक्तिक एवं कर्तव्यनिष्ठा से संबंधित विविध पक्षों को कैसे समझा जाता है। खाकी वर्दी से लक्ष्य उन्मेषित अपेक्षाओं की पूर्ति तभी संभव है जब उनकी विषम स्थितियों का सहानुभूतिपूर्ण विचार किया जाए। व्यवहार में यह देखा गया है कि उनसे सशक्त, सजग प्रहरी की अपेक्षा तो की जाती है परंतु उनके व्यवसाय एवं जीवन-पथ से संबंधित विविध अवरोधों को दूर करने का संवेदनात्मक प्रयास नहीं किया जाता है। तलाश है खाकी वर्दी के हमदर्द की, देखिए समाज की किस व्यवस्था में वह प्राप्त होता है?

संतान का लोभ और किराए की कोख

अरुण कुमार पाठक

चक्रपाणि मनियार, 113/4, शिवकुटी (अपट्रान टी.बी. फैक्ट्री के पीछे) इलाहाबाद-211004 उ.प्र.

कहते हैं कि मातृत्व एक स्त्री के जीवन का सबसे खूबसूरत अहसास होता है। मातृत्व के सुखद अहसास के साथ ही प्रकृति ने उसकी झोली में ममता भरकर उसे परिपूर्णता प्रदान की है। बच्चे की पहली किलकारी, नन्हे पैरों से लिए पहले कदम और उसकी तोतली जुबान से मां सुनना एक स्त्री के लिए कभी न भूलने वाले पल होते हैं, जिन्हें वह हमेशा अपने दिल में संजोकर रखती है।

ऐतरेय उपनिषद् के द्वितीय अध्याय में वर्णित है–

सा भावयित्री भावयित्वा भवति तं स्त्री गर्भं विभूती सोऽग्र एवं कुमारं...।

अर्थात् वह मां गर्भ को पालने वाली है, इस कारण पति तथा पुत्र से पालने योग्य है। उस गर्भ को स्त्री बड़े यत्न से, विवेक से 9-10 माह तक पालती है।

भारतीय सामाजिक परंपरा में कोई स्त्री शिशु को गर्भ में नौ माह धारण करने तथा तदुपरांत उसे जन्म देने से ही मां का पद प्राप्त करती है। यह मां का पद बहुत आत्मीय व ममत्वपूर्ण होता है। हमारे प्राचीन भारतीय समाज में नियोग इत्यादि परंपराओं से वैकल्पिक पितृत्व के संकेत तो मिलते हैं लेकिन मातृत्व कभी वैकल्पिक नहीं हुआ।

मातृत्व पर कभी प्रश्न चिह्न नहीं लगा। मां हमेशा संदेहों एवं प्रश्न चिह्नों से परे रही है। जन्मदात्री और पालनकर्त्री के रूप में विभेद अवश्य हुए, जैसे देवकी कृष्ण की जन्मदात्री मां और यशोदा उनकी पालनकर्त्री मां के रूप में लोकविश्रुत रही, किंतु जन्मदात्री मां के ही विभेद और विकल्प, अर्थात् जैविक मां कोई और तथा जन्मदात्री कोई और, यह स्थिति पूर्णतया तकनीक सिद्ध आधुनिकता के दिमाग की ही उपज हो सकती है।

आधुनिक विज्ञान के सामाजिकता से परे विज्ञानियों ने मां के पुण्य रिश्ते को धन के माध्यम से इस प्रकार परिवर्तित कर दिया है कि बच्चे के जन्म की प्रक्रिया पूरी तरह मैकेनिकल हो गयी है। डा. यशोदा म्हात्रे का कहना है कि, "गर्भ एक ओवेन (oven) की तरह है। इसमें काला चाकलेट बेक करना है या सफेद वनीला केक, यह आपकी मर्जी पर है। अब गहरे श्यामवर्ण की लड़कियां भी विदेशी नाक-नक्श के गुलाबी बच्चे को जन्म दे सकती हैं।"

आज विज्ञान ने नैसर्गिक मातृत्व को पेशेवर बना दिया है। विज्ञान ने किराए की कोख का एक नया प्रयोग सृजित करके 'टेक होम बेबी' जैसी बातों को साकार किया है। विगत दो दशकों में पुनरुत्पादन तकनीक (Reproductive Technique) के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। इस क्षेत्र में आयी नवीन तकनीकों—डोनर इनसरमिनेटर, आई.वी.एफ. तथा भ्रूण अंतरण इत्यादि ने प्रजनन वातावरण को आमूल-चूल बदलते हुए 'अपने बच्चे' की इच्छा रखने वाले निःसंतान दम्पतियों की आंखों में नए स्वप्न उत्पन्न कर दिए हैं।

विगत 7-8 वर्ष में इस प्रजनन के क्षेत्र में एक नए विकल्प का उद्भव हुआ। यह विकल्प 'किराए की कोख' का है, वैकल्पिक मातृत्व का है। 'किराए की कोख' की तकनीक बांझपन का अभिशाप झेल रही महिलाओं के लिए एक सुखद संदेश लायी है। किराए की कोख से संतान पाने की यह प्रक्रिया 'सरोगेसी' के नाम से जानी जाती है।

'सरोगेसी' लैटिन भाषा के शब्द सबरोगेट से बना है, जिसका अर्थ है किसी दूसरे को अपने काम के लिए नियुक्त करना। पारिभाषिक रूप से सरोगेसी वह प्रक्रिया है जिसमें एक स्त्री किसी अन्य स्त्री के लिए उसके बच्चे को अपने गर्भ में धारण करती है, वह भी इस अभिप्राय

से कि जन्म होने के बाद उस बच्चे को उसके अधिकारी माता-पिता (Commissioning Parents) को दिया जा सके। इस प्रकार सरोगेट मां वह है, जो किसी दूसरी स्त्री के लिए बच्चे को गर्भ में धारण करके जन्म देती है।

जीव वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो सरोगेसी प्रजनन-व्यवस्था का वह रूप है, जिसमें एक स्त्री किसी दंपति के निषेचित अण्डाणु को अपने गर्भ में आश्रय देती है और नौ महीने के बाद शिशु को जन्म देकर उस दंपति को सौंप देती है अर्थात सरोगेट मां, 'मां' तो है, लेकिन बच्चा उसका नहीं है, बच्चे का अभिभावक कोई और है, अर्थात् वह दंपति है जिन्होंने उसकी कोख के लिए किराया अदा किया है अर्थात् धन देकर उसकी कोख का सौदा किया है।

इस प्रकार किराए की कोख से बच्चा पाने वाली व्यवस्था में दो प्रकार की मां होती हैं, पहली वह जो जैविक (Gentic) तथा सामाजिक या अधिकारी (Commissioning) मां, जो बच्चे के लिए अपना अंडाणु (ovem) प्रदान करती है और जन्म के बाद उसे अपनाती है तथा दूसरी सरोगेट मां, जो किराया लेकर बच्चे को कोख में नौ माह तक धारण करती है। किसी-किसी परिस्थिति में जैविक तथा सामाजिक माताएं अलग-अलग होती हैं, तो कभी-कभी सरोगेट मां ही जैविक मां होती है और सामाजिक मां कोई और।

किराए की कोख की आवश्यकता क्यों?

किराए की कोख की आवश्यकता निम्न प्रकार की महिलाओं के लिए पड़ती है—

- अनुर्वर (बांझपन की शिकार) स्त्री के लिए।
- टी.बी., गर्भाशय का ट्यूमर, कैंसर जैसी बीमारी या दुर्घटना के कारण स्त्री का गर्भाशय गर्भधारण करने में अक्षम हो या नष्ट हो गया हो।
- बचपन से ही गर्भाशय न हो।
- गर्भधारण के पश्चात् बार-बार गर्भपात करवाना पड़ता हो।
- सेलेब्रिटिज द्वारा अपनी फिगर व समय बचाने के लिए आदि।

सरोगेसी के प्रकार : किराए की कोख से बच्चा जनने के लिए दो प्रकार की पद्धतियां हैं—

1. ट्रेडिशनल सरोगेसी : इस पद्धति में संतान सुख के इच्छुक दम्पति में से पिता के शुक्राणुओं को एक स्वस्थ महिला के अण्डाणु के साथ प्राकृतिक रूप से निषेचित किया जाता है। शुक्राणुओं को सरोगेट मदर के नैचुरल ओव्यूलेशन के साथ डाला जाता है। इसमें जेनेटिक संबंध सिर्फ पिता से होता है।

2. जेस्टेशनल सरोगेसी : इस पद्धति में माता-पिता के अण्डाणु और शुक्राणुओं का मेल परखनली विधि से करवाकर भ्रूण को सरोगेट मदर की बच्चेदानी में प्रत्यारोपित कर दिया जाता है। इस बच्चे का जेनेटिक संबंध मां एवं पिता दोनों से होता है। इस पद्धति में सरोगेट मदर को ओरल पिल्स खिलाकर अण्डाणु विहिन चक्र में रखना पड़ता है जिससे बच्चा होने तक उसके अण्डाणु न बन सकें।

इसे निम्न प्रकार से भी विभेदित किया गया है—

1. पूर्ण सरोगेसी (Total surrogacy) : इस व्यवस्था में आई.वी.एफ. (इन विट्रो फर्टिलाइजेशन) तकनीक की समस्या से संतान इच्छुक दंपति के युग्मकों को मिलाकर भ्रूण निर्माण किया जाता है और इसके बाद यह सरोगेट मां के गर्भाशय में रोप दिया जाता है अर्थात संतान इच्छुक दंपति में से पत्नी की शारीरिक अक्षमता के कारण किसी अन्य स्त्री के अण्डाणु लिए जाते हैं।

2. आंशिक सरोगेसी (Partial surrogacy) : इस विधि में संतान इच्छुक दंपति में से पत्नी की शारीरिक अक्षमता के कारण पति के शुक्राणु से सरोगेट स्त्री के अण्डाणुओं का निषेचन कराया जाता है और निषेचित अण्डाणु को उसी सरोगेट मां के गर्भाशय में रोप दिया जाता है अर्थात् इस विधि से उत्पन्न संतान (harvested संतान) के जैविक ढांचे में उसके पिता के साथ सरोगेट मां भी सहभागी होती है। कहा जाता है कि इस प्रक्रिया

में सरोगेट स्त्री ही बच्चे की प्राकृतिक मां भी होती है।

चिकित्सकों के अनुसार इस प्रकार के मामलों में सरोगेट मां से सामान्य दैहिक संबंधों के माध्यम से भी निषेचन संभव हो सकता है परंतु नैतिकता के दृष्टि से वर्ज्य होने के कारण ऐसा किया नहीं जाता। इसके स्थान पर सरोगेट मां के अण्डाणु परखनली में रखकर संतान इच्छुक पति के शुक्राणु से निषेचित कराया जाता है। निषेचन के भ्रूण को सरोगेट मां के गर्भाशय में रोप दिया जाता है।

सरोगेसी का प्रारंभ

दुनिया में सरोगेसी की परंपरा महाभारत काल जितनी पुरानी है। भगवान श्रीकृष्ण के भाई बलराम का जन्म इसी विधि से हुआ था। जब राजा कंस के डर से देवकी के गर्भ से उनका प्रतिरोपण रोहिणी देवी के गर्भ में कर दिया गया था। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो स्पर्म डोनर (Sperm Doner) हुए वासुदेव, एग डोनर हुई देवकी और उन्हें जन्म दिया सरोगेट मदर रोहिणी देवी ने।

बाइबिल में भी सरोगेसी का जिक्र चैप्टर-16 में अब्राहम व सारा के रूप में मिलता है। सारा बंध्या थी और उन्होंने अपनी दासी 'हैगर' से आग्रह किया था कि वह उनके और अब्राहम के बच्चे को जन्म दें।

प्राचीन बेबीलोनियन कानून और संस्कृति भी बांझ और तलाक से बचने के लिए सरोगेसी को मान्यता देती थी।

आधुनिक विश्व में किराए की कोख (सरोगेसी) का पहला मामला वर्ष 1976 में अमेरिका में सामने आया। वर्ष 1980 में मिशिगन के वकील *नोयल किएन* ने पहली सरोगेसी संविदा (Contract) को लिपिबद्ध किया। वर्ष 1984 में सरोगेसी व्यापक चर्चा में तब आया जब न्यूजर्सी के विलियम व एलिजाबेथ के लिए सरोगेट मां बनी मेरी वेथ व्हाइटहैड ने *मेलिसा स्टर्न* तथाकथित *'बेबी M'* को जन्म दिया तथा जैविक माता-पिता द्वारा मांगे जाने पर बच्चा देने से इंकार कर दिया। अंततः 1986 में न्यायालय में चले वाद पर न्यायालय ने बच्चा जैविक माता-पिता को देने का आदेश किया तथा मेरी वेथ व्हाइटहैड को पुलिस ने गिरफ्तार कर जेल भेज दिया।

भारत में सरोगेसी से जुड़ा स्पष्ट मामला वर्ष 2004 में प्रकाश में आया जब एक 47 वर्षीया महिला ने अपनी गर्भ धारण में अक्षम बेटी के लिए अपनी कोख दी। गुजरात में हुए इस प्रकरण में दो जुड़वां बच्चियों ने अपनी नानी की कोख से जन्म लिया था।

आज भारत का गुजरात राज्य किराए की कोख से बच्चा प्रजनन करने का हब बन चुका है तथा यहां का आणंद जिला भारत की सरोगेट राजधानी बन चुका है। इसके अलावा राजस्थान, नई दिल्ली और छोटे महानगरों तक भी किराए की कोख का जाल बिछ गया है। गुजरात व नई दिल्ली की तमाम क्लिनिकों में तो सरोगेसी हाउस बनाए गए हैं तथा 'टेक होम बेबी' जैसे विज्ञापन कुछ वेबसाइटों पर डाले गए हैं।

सरोगेसी व्यवस्था के प्रकार

किराए की कोख (सरोगेसी) व्यवस्था दो प्रकार की होती है—

1. वाणिज्यिक या व्यावसायिक व्यवस्था (Commercial or Professional) : इस व्यवस्था में सरोगेट मां को गर्भावस्था से संबद्ध आवश्यक चिकित्सकीय और स्वास्थ्य संबंधी खर्च के अतिरिक्त पर्याप्त धन का भुगतान किया जाता है। प्रायः इस व्यवस्था में संतान इच्छुक दंपति और सरोगेट मां में कोई जान-पहचान या संबंध नहीं होता है और इसी कारण इस व्यवस्था में बीच में कारण के रूप में धन स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहता है। इस व्यवस्था में संबंधित ए आर टी (असिस्टेड रिप्रोडक्टिव तकनीक) तथा विज्ञापन आदि के मद में भी खर्च होता है।

2. परार्थवादी अथवा भावात्मक व्यवस्था (Altmistic or Emotional Arrangement) : इस

प्रकार की व्यवस्था में सरोगेट मां संतानोच्छुक दंपति की रक्त संबंधी अथवा निकटस्थ मित्र स्त्री या स्त्री दंपति में से एक की मां, भाभी या बहन हो सकती है। इस व्यवस्था में सरोगेट मां के निकटस्थ होने के कारण धन की भूमिका प्रायः नगण्य या न्यूनतम होती है। इसमें अधिक-से-अधिक गर्भावस्था से जुड़े आवश्यक खर्च का भुगतान ही सरोगेट मां को किया जाता है।

इसे भावात्मक व्यवस्था इसलिए भी कहते हैं कि इसमें संतान उत्पन्न करने में अक्षम स्त्री से भावात्मक-रागात्मक संबंध रखने वाली स्त्री उसकी अपूर्णता को पूर्णता में बदलने के लिए अपनी कोख देने को तैयार होती है।

व्यावसायिक अथवा परार्थवादी व्यवस्थाओं के बीच में कोई स्पष्ट विभाजक रेखा खींच पाना संभव नहीं है, क्योंकि कभी भी एक व्यवस्था दूसरी व्यवस्था में परिवर्तित हो सकती है। कभी भी निकटस्थ मित्र या संबंधी लालच में पड़कर संतान इच्छुक दंपति को ब्लैकमेल करने लग सकते हैं या धन के लालच में पड़ सकते हैं या व्यावसायिक दृष्टि से संपर्क में आई सरोगेट मां बच्चे से भावात्मक रूप से जुड़कर बच्चा देने से इंकार करने लग सकती है।

किराए की कोख की कीमत व शर्तें

किराए की कोख वाली सरोगेट मां की कोख की कोई नियत कीमत नहीं है, लेकिन विभिन्न अस्पतालों और एजेंसियों से जानकारी करने पर पता चला है कि सरोगेट मदर को चार लाख रुपये तक दिया जाता है। जुड़वां बच्चा होने की स्थिति में यह कीमत दो गुनी हो जाती है। यदि पहले ही गर्भ गिर गया तो सरोगेट मां को लगभग 50,000 रु. देकर विदा कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त पौष्टिक तत्व आदि सरोगेट मदर को देने की जिम्मेदारी संबंधित क्लिनिक या अस्पताल की होती है। क्लिनिक या अस्पताल बच्चा चाहने वाली दंपति से हर सफल गर्भावस्था के लिए 18 से 20 लाख रुपये लेता, किराए पर कोख देने वाली माताओं को कुछ शर्तों का भी पालन करना पड़ता है, ये निम्न हैं—

1. सरोगेट माताओं को डार्मेट्री में रहना अनिवार्य है, उन्हें बच्चा जन्म देने से पूर्व घर जाने की इजाजत नहीं है।

2. गर्भावस्था के दौरान सेक्स करने की इजाजत नहीं है।

3. सरोगेट माता को होने वाली किसी भी दुर्घटना के लिए संतान इच्छुक दंपत्ति, अस्पताल या डॉक्टर जिम्मेदार नहीं है।

4. सरोगेट मां सप्ताह में सिर्फ एक बार रविवार को ही अपने पति व बच्चों से मिल सकती है।

5. एक महिला अधिकतम तीन बार ही सरोगेट मां बन सकती है।

6. भारतीय कानून के अनुसार पैदा होने वाली संतान पर सरोगेट माता का न तो हक होता है, न ही जिम्मेदारी।

किराए की कोख के स्याह पक्ष

इसके कुछ पक्ष ऐसे है, जिनकी कोई कानूनी व्याख्या अभी तक नहीं की जा रही है, जैसे—

1. किराए की कोख देने वाली सरोगेट मदर की यदि प्रसव के दौरान मृत्यु हो जाए तो क्या होगा?

2. यदि सरोगेट मदर एक से अधिक बच्चों को जन्म दे तो अन्य बच्चों का क्या होगा? यदि जुड़वां बच्चों में एक लड़का व एक लड़की हो तथा संतानोच्छुक दंपत्ति लड़की लेने से इंकार कर दे, तब क्या होगा?

3. यदि बच्चा अपंग या मानसिक रूप से विकृत पैदा हो, तब क्या होगा?

4. इसकी क्या गारंटी है कि किराए की कोख से पैदा होनेवाले बच्चों का इस्तेमाल अंगों की खरीद फरोख्त या देह-व्यापार के लिए नहीं होगा?

5. इससे अनाथ बच्चों को गोद लेने की प्रवृत्ति में गिरावट आएगी।

संतान को जन्म देने में सक्षम दंपति भी किराए की कोख से बच्चा प्राप्त कर रहे हैं। अपने काम में अति व्यस्त धनी महिलाएं फैशन व ग्लैमर जगत की हस्तियां भी इस विधि से बच्चा प्राप्त कर रहे हैं। भारतीय अभिनेता आमिर खान व शाहरुख खान दंपति इस विधि से बच्चा हासिल कर चुके हैं।

सरोगेसी का बढ़ता कारोबार

नेशनल आर्टिफिशियल रिप्रोडक्टिव टेक्नीक रजिस्ट्री आफ इंडिया के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2004 में सरोगेसी के 50 मामले प्रकाश में आए। वर्तमान में यह 600 से 700 के बीच पहुंच गया है। आंकड़ों के अनुसार वर्तमान में भारत में कुल 360 फर्टिलिटी क्लीनिक सरोगेट माताओं की व्यवस्था करते हैं। अकेले 'भारत की सरोगेट राजधानी' कहे जानेवाले आणंद (गुजरात) की आकांक्षा क्लिनिक में प्रति वर्ष सरोगेसी के औसतन 150 मामले होते हैं। भारत में स्थानीय दंपतियों के अलावा चीन, फ्रांस, जर्मनी, ताइवान, कोरिया, इसराइल, ग्रेट-ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया व संयुक्त राज्य अमेरिका के अनेक संतानहीन दंपति "अपने बच्चे" की चाह में भारत की ओर खिंचे चले आ रहे हैं। भारत विदेशियों के लिए चिकित्सा पर्यटन के बाद प्रजनन पर्यटन केंद्र के रूप में विकसित होता जा रहा है।

अंतर्राष्ट्रीय सरोगेसी एजेंसी "सरोगेसी आस्ट्रेलिया" ने आकड़े पेश करते हुए कहा कि वर्ष 2012 में भारत में आस्ट्रेलिया के 200 संतान इच्छुक दंपतियों को अपना बच्चा मिला। वर्ष 2011 में यह आंकड़ा 179, वर्ष 2010 में 86 तथा 2009 में 46 था।

भारत ही क्यों?

सरोगेसी के लिए भारत की ओर रुख करने का सबसे बड़ा कारण है—भारत में किराए की कोख के संबंध में कोई कानून न होना तथा किराए की कोख सभी के लिए उपलब्ध होना। अन्य कारण निम्नवत हैं :—

एक बड़े तबके का आर्थिक कमजोर होना

भारत में दुनिया के एक-तिहाई गरीब रहते हैं जो अपनी दैनिक जरूरतों को भी बमुश्किल से पूरा कर पाते हैं। ऐसे गरीब परिवारों की महिलाओं के लिए सरोगेसी एक विकल्प बनकर उभरा है।

सुविधा से प्राप्त

भारत में सरोगेट मां आसानी से विभिन्न एजेंसियों/क्लिनिकों के माध्यम से मिल जाती है। जबकि विदेशों में सरोगेट मां को खोजना बहुत कठिन काम है। वेटिकन सिटी जैसे देश तो इस प्रक्रिया को प्राकृतिक व्यवस्था का उल्लंघन तथा बच्चे की खरीदारी मानते हैं।

कानूनी सहूलियत

वर्तमान भारतीय कानून भी सरोगेसी को प्रोत्साहन देनेवाला ही है। भारत में व्यावसायिक सरोगेसी कानूनी रूप से वैध है। यहां एक स्त्री कानूनन 05 बार सरोगेशन कर सकती है, जबकि अनेक दूसरे देशों में यह संख्या 02 ही है।

यहां पर सरोगेट मां से जो कांट्रेक्ट (संविदा) पर हस्ताक्षर कराए जाते हैं, उसमें स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख होता है कि बच्चे को जन्म देते ही तुरंत उसकी सरोगेट मां से बच्चे पर उसका अधिकार समाप्त माना जाएगा। भारत सरकार की सरोगेसी पर 'सहायक प्रजनन तकनीकी दिशा-निर्देश' के कारण यहां बच्चे की कस्टडी लेते समय आनेवाली कानूनी पेचीदगियां बहुत कम हैं।

सरोगेसी का कम खर्चीला होना

सरोगेसी के कथित व्यापार में लगे दुनिया के अन्य देशों थाइलैंड तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की तुलना में यहां सरोगेसी की प्रक्रिया तुलनात्मक रूप से सस्ती है। एक अनुमान के अनुसार भारत में यह प्रक्रिया 18 लाख

रुपए से 25 लाख रुपए तक में पूर्ण हो जाती है, वहीं संयुक्त राज्य अमेरिका में इसके लिए लगभग 55 से 60 लाख रुपये खर्च करने पड़ते हैं।

पुण्य का काम होना

कुछ एजेंसियां सरोगेसी को पुण्य का काम कह कर प्रचारित-प्रसारित करती हैं। उनका कहना है कि सरोगेट मां उन महिलाओं के लिए पुण्य का काम करती हैं जो बांझपन का उलाहना झेलती हैं और कभी-कभी आत्महत्या तक करने को मजबूर हो जाती हैं। एजेंसियां कहती हैं कि, "आप उन महिलाओं के लिए उम्मीद की एक किरण हैं जो उनको ही उनका अंश स्वयं कष्ट सहकर सौंपती है।"

उन्नत स्वास्थ्य सुविधाएं होना

भारत में दुनिया के विकसित देशों की तरह ही उन्नत स्वास्थ्य सुविधाएं तथा देखभाल की बेहतर व्यवस्था होने से यहां लोग अपने बच्चे की तलाश में आते हैं। उन्हें यहां उच्च प्रशिक्षित डाक्टर व देखभाल में तत्पर नर्सिंग स्टाफ मिलता है वह भी काफी कम मूल्य पर।

मानव संसाधन की अधिकता व निर्धनता

विश्व की दूसरी नंबर की जनसंख्या वाला देश होने के कारण भारत मानव संसाधन की दृष्टि से अति समृद्ध है। इस जनसंख्या का काफी भाग युवा स्त्रियों का है। स्वाभाविक रूप से प्रजनन की दृष्टि से स्वस्थ स्त्रियां यहां उपलब्ध हैं। इसके अलावा यह भी सत्य है कि भारतीय जनता का एक बड़ा वर्ग काफी निर्धन है, जिससे मुक्ति का कोई भी उपाय मिलते ही सभी उसी ओर भागते हैं। आश्चर्य नहीं कि सरोगेट मां बनने के लिए तत्पर स्त्रियों का एक बड़ा समूह उस निम्न मध्य वर्ग से जुड़ा है, जिसका अधिकांश वक्त दो जून की रोटी के लिए संघर्ष करते बीतता है।

भारतीय मूल के लोगों का भारत से लगाव

भारतीय मूल के प्रवासी भारतीय दंपति अपने बच्चे के लिए भारत की सरोगेट मदर चाहते हैं ताकि उनके बच्चे में भारतवंशी की झलक दिखे। इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति तथा अध्यात्म से जुड़े विदेशी मूल के लोग भी भारतीय सरोगेट मां ही पसंद करते हैं। भारतीय स्त्रियां यद्यपि अपनी निर्धनता व पारिवारिक-सामाजिक मजबूरियों के कारण कोख किराए पर देने की कीमत अवश्य लेती हैं परंतु किसी सूनी गोद को किलकारी से भरने का आत्मिक सुकून भी उन्हें अनुभव होता है।

उत्पादक-उपभोक्ता संतुष्टि

भारत में सरोगेसी का बाजार तेजी से बढ़ने का प्रमुख कारण उत्पादक और उपभोक्ता दोनों पक्षों को अधिकतम संतुष्टि मिलना भी है। यहां उत्पादक किराए की कोख देनेवाली सरोगेट मां को अपेक्षाकृत अधिक कीमत सुविधाजनक तरीके से प्राप्त हो जाती है, वहीं उपभोक्ता, संतान इच्छुक दंपति को सुविधाजनक तरीके से अन्य स्थानों की अपेक्षाकृत कम कीमत पर कम-से-कम कानूनी अड़चनों के साथ सरोगेट मदर मिल जाती है।

अमीर बनने की आकांक्षा

आर्थिक बेहाली से जूझ रही तमाम निर्धन परिवारों की महिलाओं ने सरोगेसी से अपना जीवन स्तर सुधार लिया और अब अपनी पुत्रियों को इस हेतु प्रेरित कर उनकी भी गरीबी दूर करने में मददगार बनी हुई हैं। इसका कारण यह है कि मात्र एक सरोगेसी प्रक्रिया में निर्धन परिवार को इतना धन नौ माह में मिल जाता है जो सामान्य रूप से उनकी पांच-दस वर्षों की कुल आय के बराबर होता है।

भारत में सरोगेसी स्वीकारने के कारण

भारत में सरोगेसी जैसा संवेदनशील मुद्दा इतनी तेजी से स्वीकार हो रहा है, इसके निम्न कारण हैं—

1. परिवार द्वारा सरोगेसी के लिए महिला को स्वीकृति देना तथा बच्चा पैदा करने के बाद स्वीकार कर लेना,

2. निर्धन स्त्रियों को अपेक्षाकृत आसानी से अधिक धन मिलने से जीवन स्तर में सुधार होना,

3. गरीब पतियों द्वारा बेहतर जीवन की चाह में पत्नियों को सरोगेसी हेतु प्रेरित करना,

4. पुरुष से महिला को सीधा शारीरिक संपर्क न होने से नैतिकता का भी प्रश्न नहीं उठता आदि।

सरोगेसी और नागरिकता का प्रश्न

किराए की कोख से जन्मे बच्चे की नागरिकता का प्रश्न भी एक मुद्दा है। कई देश इस प्रकार के बच्चे को अपने देश की नागरिकता देते हैं, जैसे—संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, ग्रेट ब्रिटेन, कनाडा आदि। वहीं दूसरी तरफ फ्रांस, इटली और नार्वे जैसे कुछ देश दूसरे देश में सरोगेसी से पग्दा हुए बच्चों को अपने देश की नागरिकता नहीं देते हैं। जर्मनी का रुख तो इस मामले में बहुत सख्त है। भारत आनेवाले अपने दंपतियों के लिए वहां के विदेश मंत्रालय ने अपनी वेबसाइट पर स्पष्ट लिख रखा है कि "यदि आप इसलिए भारत जा रहे हैं कि किराए की कोख से बच्चा ला सकें, तो ध्यान रहे कि जर्मनी में सरोगेसी पर रोक हैं। किराए की कोख से पैदा हुए बच्चे का जर्मनी के पासपोर्ट पर कोई हक नहीं हैं।"

सरोगेसी पर धर्म का रुख

हिंदू, सिक्ख, इसाई आदि धर्मों के लोगों ने इस प्रक्रिया पर अपनी कोई राय नहीं दी है, न ही कोई विरोध किया है, लेकिन इस्लाम धर्म में सरोगेसी को नाजायज माना गया है। इस्लाम में कृत्रिम गर्भाधान (आर्टिफिसियल इन्सेमनैशन) के जरिए संतान-सुख प्राप्त करना और किराए की कोख (सरोगेसी) का सहारा लेना नाजायज है। यह कहना है प्रमुख इस्लामी संस्था बरेली मरकज का। बरेली मरकज के दारूल इफ्ता ने एक सवाल के जवाब में फतवा जारी कर मुसलमानों को कृत्रिम गर्भाधान और किराए की कोख से बचने की सलाह दी है। बरेली मरकज बरेलवी मुसलमानों की सबसे बड़ी संस्था है।

फतवे के अनुसार इस्लाम में अप्राकृतिक ढंग से संतान सुख पाने की मनाही है। इंसानी रवायत में जो तरीके हैं, वही सही हैं। टेस्ट ट्यूब बेबी अथवा कृत्रिम गर्भाधान तथा सरोगेट मदर की बात नाजायज है। दरअसल एक युवक ने पूछा था कि अगर कोई मुस्लिम दंपति संतान-सुख की प्राप्ति नहीं कर पा रहा है और वे बच्चा भी गोद नहीं लेना चाहते तो क्या वे कृत्रिम गर्भाधान का सहारा ले सकते हैं? सरोगेट मदर का सहारा लेना कितना जायज है? कृत्रिम गर्भाधान का सहारा अमूमन वे दंपत्ति लेते हैं जिनमें किसी तरह का शारीरिक विकार होता है।

कभी-कभी अकेले रहनेवाली महिलाएं भी संतान-सुख के लिए किसी डोनर के वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान का सहारा लेती हैं। किराए की कोख लेने का चलन भी इन दिनों तेजी से बढ़ा है। फतवे के बारे में दारूल इफ्ता के प्रमुख मुफ्ती कफील अहमद ने कहा कि हम मुसलमानों से यह कहना चाहेंगे कि वे किसी भी सूरत में गर्भाधान का सहारा न लें। इस्लाम इसकी इजाजत नहीं देता। किराए की कोख लेने की भी इजाजत हमारे मजहब में नहीं दी गयी है।

सरोगेसी में क्या है बुराई

जहां सरोगेसी गरीब महिलाओं के लिए उनके सशक्तीकरण व आत्मनिर्भरता का हथियार बनकर उभरी है, वहीं इसमें तमाम बुराइयां भी छिपी हुई हैं, ये बुराइयां हैं—

1. कहीं यह शौक न बन जाए,
2. कहीं यह चलन आम न हो जाए,
3. कहीं इसका दुरुपयोग शुरू न हो जाए,
4. कहीं पारिवारिक जीवन न बिखर जाए,

5. कहीं उच्चाकांक्षी कामकाजी सेलीब्रिटीज बच्चा स्वयं पैदा करना ही न चाहें,

6. कहीं एड्स रोगी अपना युग्मक देकर सरोगेसी के माध्यम से मां को एड्स रोगी न बना दें।

सरोगेसी अस्वीकार क्यों?

निःसंतान दंपति की जद्दोजहद व इलाज के कष्ट व तनाव भरी जिंदगी के वैज्ञानिक इलाज सरोगेसी को अस्वीकार करने के लिए उठ रही आवाजों के पीछे निम्न कारण हैं—

1. प्रकृति विरुद्ध अनैतिक कृत्य : एक प्रकार से सरोगेसी अप्राकृतिक व्यवहार का चरम है। मात्र इसलिए कि विज्ञान से यह संभव है, कुछ भी व्यवहार्य व स्वीकार्य नहीं हो सकता। मात्र इसलिए कि तकनीक उपलब्ध है। हमें भगवान नहीं हो जाना चाहिए। भारतीय परिवेश में सरोगेसी पूर्णतया नैसर्गिक संतानोत्पत्ति के सिद्धांत के विपरीत है और धन के जुड़ाव से यदि सरोगेसी के पक्ष में कोई स्वीकार्यता बनती भी है तो भी यह स्वीकार्यता सतही और अल्पकालीन होती है तथा इसमें विरोध की अंतरधारा ही प्रवहमान रहती है। विश्वभर के अनाथालय बच्चों से पटे पड़े हैं। अनेक बच्चे यूं ही सड़कों, राजमार्गों पर पड़े मिलते हैं पर उनकी सुध लेने वाला कोई नहीं है।

यह ध्रुव सत्य है कि सरोगेट माताओं को रुपए की जरूरत होती है परंतु अनाथ बच्चों को भी बेहतर घर की जरूरत होती है। जब तक दुनिया के सभी अवांछित व अनाथ बच्चे गोद न ले लिए जाएं, यह पद्धति अनैतिक रहेगी।

2. स्त्रीत्व का अपमान : एक शिशु को गर्भ में धारण करना है और तत्पश्चात उसे जन्म देना स्वयं में अद्भुत तथा असाधारण प्रक्रिया है। शिशु के गर्भ में आते ही मातृत्व हिलोरें लेने लगता है और उसके लिए स्नेहिल भावनाएं उत्पन्न करनेवाले हार्मोंस उत्सर्जित होने लगते हैं। तब 09 माह तक बच्चे को पोषण देने के बाद उससे खुद को अलग कर पाने का एहसास मां के लिए बहुत कठिन है।

उस शिशु के साथ हर पल रहने, बोलने, बतियाने, सुख-दुख बांटते रहने और अपने खून से सींचकर पोषित करने के बाद एक दिन कोई आए और यह कहे कि 'धन्यवाद, आपका काम खत्म हो गया अब यह मेरा है।' तो निःसंदेह यह स्त्रीत्व का अपमान है।

सरोगेट स्त्री का शोषण

रुपए लेकर अपनी कोख किराए पर देने वाली सरोगेट माताएं पग-पग पर शोषण का शिकार होती हैं, यह शोषण निम्न रूप में हो सकता है—

1. एजेंटों/बिचौलियों/क्लिनिकों द्वारा अशिक्षित स्त्रियों को कम मूल्य पर किराए की कोख देने के लिए राजी कर लेना तथा संतान इच्छुक दंपति से भारी राशि प्राप्त करना।

2. 09 माह तक गर्भ में बच्चे को पालकर उसे जन्मते ही एकाएक उसके जैविक माता-पिता को सौंप देना।

3. सरोगेट मां का प्रयोग बच्चा पैदा करने वाली मशीन के रूप में करना तथा उसे 09 माह तक क्लिनिक/नर्सिंग होम में ही पड़े रहने देना।

4. बच्चे पर सरोगेट मां का जरा भी अधिकार नहीं होना।

5. सरोगेट मदर को सामाजिक छींटाकसी का सामना करना।

6. सरोगेट मां को मिलने वाले रुपयों पर पति तथा बच्चों द्वारा कब्जा कर लेना तथा उसे अपने एशोआराम के लिए प्रयोग करना।

7. जैविक माता-पिता द्वारा जुड़वां बच्चा पैदा होने पर गर्ल चाइल्ड को लेने से इंकार कर देना।

8. उर्वर दंपति द्वारा भी कैरियर व ग्लैमर के चलते किराए की कोख हासिल कर निर्धन व जरूरतमंद महिला का शोषण करना।

9. कई बार किराए पर कोख देनेवाली माताओं को बीमारियों का सामना करना।

10. विकलांग, विकृत बच्चा पैदा होने पर जैविक माता-पिता द्वारा लेने से इंकार करने के बाद सरोगेट मां के लिए उस बच्चे की जिम्मेदारी उठाना आदि।

बच्चे का शोषण

सरोगेसी के माध्यम से अपना बच्चा पाए दंपति कभी-कभी उस बच्चे से उतना भावनात्मक लगाव नहीं रखते, जितना गर्भ में पालने वाली मां, तब उसका शोषण शुरू हो जाता है। जैसे—

1. जैविक माता-पिता का आपस में अलगाव या तलाक आदि होने पर उसके पालन-पोषण की जिम्मेदारी तय नहीं हो पाती। उसे पुनः अनाथालय में ही जाना पड़ जाता है।

2. जैविक माता-पिता का सरोगेसी प्रसंग के बाद नैसर्गिक रूप से अपना बच्चा पैदा हो जाने की स्थिति में सरोगेट चाइल्ड के साथ दूसरे दर्जे का व्यवहार होना।

3. सरोगेसी से उत्पन्न हुए बच्चों से जैविक माता-पिता का भावात्मक लगाव नहीं होने से उन्हें बड़े होने पर आतंकी गतिविधियों, मानव देह व्यापार या अनैतिक जेनेटिक इंजीनियरिंग से जुड़े अनुसंधान में सौप देना।

4. कभी-कभी उम्रदराज दंपति (60 वर्ष या इससे अधिक) सरोगेसी के माध्यम से माता-पिता बन जाते हैं, बिना यह सोचे कि उनके बाद उस बच्चे का भविष्य क्या होगा?

सरोगेसी : राष्ट्रीयता तथा कानूनी मुद्दे

किराए की कोख (सरोगेसी) को मुद्दा सीधे धन से जुड़ा हुआ है जिसके कारण अनेक विधिक, राष्ट्रिक तथा अन्य सामाजिक मुद्दे इससे अपने आप जुड़ जाते हैं। सामान्यरूप से प्रथम दृष्टया जो कानूनी मुद्दे उभरकर सामने आए हैं, वे हैं—

1. बच्चे की वास्तविक मां कौन है? बच्चे की किराए की कोख में पालने वाली मां या उसकी जैविक मां।

भारतीय कानून में जैविक मां को बच्चे की मां माना गया है, जबकि ब्रिटेन में सरोगेट मां को बच्चे कानूनी अभिभावक माना जाता है। रूस, यूक्रेन, सं. राज्य अमेरिका आदि देशों में सरोगेट मां को सरोगेसी से पैदा बच्चों पर कोई अधिकार नहीं दिया गया है।

2. गर्भपात, जुड़वां बच्चों, विकलांग, मानसिक विकृत बच्चों आदि के मामलों में क्या निर्णय हो?

3. यदि बच्चे को जन्म देते समय सरोगेट मदर की मृत्यु हो जाये तथा वह पहले से स्वयं 1-2 बच्चों की मां हो, तब क्या हो?

4. यदि सरोगेट मदर जैविक माता-पिता के शुक्राणु-अण्डाणु से एड्स जैसे गंभीर रोग से ग्रसित हो जाए, तब क्या हो?

5. यदि सरोगेट दंपति में बच्चे के जन्म के पूर्व ही तलाक हो जाए तो सरोगेट बच्चे का क्या होगा?

भारत में वर्ष 2002 से सरोगेसी (किराए पर कोख) देने को कानूनी रूप से वैध माना गया है, लेकिन इसके संचालन और नियमन के लिए अभी तक कोई कानून नहीं बनाया गया है। इंडियन काउंसिल फार मेडिकल रिसर्च ने सरोगेसी के लिए कुछ गाइड लाइनें बनाई हैं तथा कभी-कभी उच्च न्यायालय व उच्चतम न्यायालय कोई दिशा-निर्देश दे देते हैं, बस उन्हीं के बल पर यह सरोगेसी प्रक्रिया चल रही है।

सरोगेट बच्चे की राष्ट्रीयता को लेकर बराबर समस्याएं आती रहती हैं। फ्रांस, जर्मनी, इटली और नार्वे जैसे देश दूसरे देश में सरोगेसी से पैदा हुए बच्चों को बायोलाजिकल नागरिक की मान्यता नहीं देते हैं। इस्राइल भी सरोगेट बच्चे को अपने देश की नागरिकता नहीं देता है। नागरिकता की समस्या अक्सर ही सरोगेट बच्चों के मामलें में अड़चन पैदा करती है। राष्ट्रीयता के मुद्दे तब और भी जटिल हो जाते हैं जब भारतीय सरोगेट मदर से संतान की इच्छा करनेवाला व्यक्ति (स्त्री

या पुरुष) एक देश का और अंडाणु अथवा शुक्राणुदाता (स्त्री या पुरुष) किसी दूसरे देश का होता है।

सरोगेट मां से जुड़वां बच्चे पैदा होने तथा उनमें से एक लड़का या एक लड़की को अपनाने से मना करने पर भी समस्याएं खड़ी हो जाती हैं और देशों के बीच विवाद की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

इन सभी जटिलताओं, विवादों, तथ्यों को ध्यान में रखते हुए लगभग चालीस हजार करोड़ के इस स्वर्ण पात्र उद्योग के नियमन के लिए एक कानून बनाए जाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। राष्ट्रीय विधि आयोग ने भी इस विषय पर कानून बनाए जाने की सहमति दे दी है। अभी तक यह उद्योग केवल भारतीय मेडिकल एसोसियेशन की दिशा-निर्देशों पर ही फल-फूल रहा है, जिसके मुख्य बिंदु निम्नवत् हैं—

सरोगेसी पर आई.सी.एम.आर के दिशा-निर्देश

इंडियन काउंसिल आफ मेडिकल रिसर्च ने वर्ष 2002 में किराए पर कोख देने वाली सरोगेट मदर्स के लिए कुछ दिशा-निर्देश बनाए थे, वे अभी तक प्रभावी हैं, ये हैं—

1. सरोगेसी का समझौता दोनों पक्षों के मध्य एक लिखित संविदा द्वारा होगा जिसमें किराए पर अपनी कोख देनेवाली महिला की सहमति, उसके पति या उसके परिवारीजन का भी समझौता-पत्र लगेगा। इसके अतिरिक्त पूरी मेडिकल प्रक्रिया का विवरण-पत्र, जिसमें सरोगेट मदर को बच्चा अपने गर्भ में रखने की पूरी अवधि के लिए दिए जाने वाले भुगतान का विवरण, बच्चे के जन्म के बाद उसके जैविक माता-पिता को सौंप दिए जाने का ऐच्छिक समझौता-पत्र आदि लगेगा, लेकिन सरोगेसी का यह समझौता किसी प्रकार के वाणिज्यिक उद्देश्य के लिए नहीं होगा।

2. जन्म लेने वाले बच्चे की निम्न स्थितियों में आर्थिक मदद के लिए एक सरोगेसी एग्रीमेंट भी कराया जाएगा, जब—

क. जैविक माता-पिता में एक या दोनों की बच्चे की डिलीवरी के पूर्व ही मृत्यु हो जाए,

ख. जैविक माता-पिता में तलाक हो जाए या,

ग. जैविक माता-पिता बच्चों को लेने से इंकार कर दें।

घ. सरोगेसी संविदा में सरोगेट मदर की सुरक्षा के लिए एक निश्चित अवधि का जीवन बीमा भी कराया जाएगा।

ङ. सरोगेट मां से पैदा होने वाले बच्चे पर पूरा अधिकार जैविक माता-पिता का होगा, सरोगेट मां का नहीं, उसे डिलीवरी के तत्काल बाद ही बच्चा जैविक माता-पिता को देना होगा।

च. बच्चे के जन्म प्रमाण-पत्र पर केवल उसके जैविक माता-पिता का ही नाम होगा।

छ. डोनर (जैविक माता-पिता) तथा सरोगेट मां के निजता के अधिकार को सुरक्षित रखा जाएगा।

ज. लिंग आधारित सरोगेसी पर पूर्ण रोक है।

झ. सरोगेसी के दौरान गर्भपात आदि के मामलों का निराकरण द मेडिकल टर्मिनेशन आफ प्रेगनेंसी एक्ट, 1971 के तहत किया जाएगा।

ट. एक स्वस्थ महिला अधिकतम तीन बार ही सरोगेट मदर बन सकती है।

मा. उच्चतम न्यायालय ने भी बीच-बीच में सरोगेसी के मामलों में कुछ निर्णय दिए हैं जिनमें प्रमुख निर्णय निम्नवत् हैं :—

1. वर्ष 2008 में मनजी (जापानी बेबी) के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि भारत में वाणिज्यिक सरोगेसी वैध है।

2. वर्ष 2014 में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि भारत में अब समलैंगिक और सिंगल पैरेंट को सरोगेसी से जन्मे बच्चे नहीं मिल पाएंगे।

लोकसभा में वर्ष 2014 में प्रस्तुत किया गया विधेयक 'किराए की कोख (विनियमन) विधेयक, 2014' एक अति जरूरी विधेयक है जिसकी मदद से सरोगेसी से पूर्व तथा पश्चात् के सभी पहलुओं को कानून

के दायरे में लाकर सरोगेट मां, संतान तथा अभिभावकों के हितों की रक्षा हो सकेगी।

किराए की कोख (विनियमन) विधेयक, 2014

भारत में अपनी कोख किराए पर देनेवाली माताओं और किराए पर कोख देने के माध्यम से पैदा हुए बच्चों के हितों की रक्षा के लिए लोकसभा के शीतकालीन सत्र में बीजू जनता दल के वरिष्ठ सदस्य श्री भृतुहरि मेहताब ने एक महत्वपूर्ण गैर सरकारी विधेयक पेश किया है। इस विधेयक को किराए की कोख (विनियमन) विधेयक, 2014 नाम दिया गया है। अंग्रेजी में इसे सरोगेसी बिल, 2014 कहा गया है। इसके कारणों एवं उद्देश्यों में कहा गया है कि देश में सरोगेट मदर्स तथा सरोगेट चाइल्ड्स के हितों की रक्षा के लिए जरूरी कानूनी उपबंध करना अति आवश्यक है।

भारत में वर्ष 2006 से प्रचलन में आई किराए की कोख प्रथा काफी कम खर्चीली होने के कारण दुनिया भर के संतान से निराश दंपति भारत की ओर रुख कर रहे हैं तथा भारत किराए पर कोख देने संबंधी सेवाओं के केंद्र में लगातार उभर रहा है। इससे जहां किराए पर कोख देने संबंधी तकनीकों से बहुत-से निराश दंपतियों के जीवन में खुशी आई है, वहीं इसके अत्यधिक दुरुपयोग और इसमें शामिल विभिन्न नैतिक मुद्दों के कारण इसकी लगातार आलोचना भी हो रही है।

इस विधेयक में कहा गया है कि महत्वपूर्ण लिंग चयन और सामान्य गर्भ धारण वाले मामलों में भी इसका उपयोग किए जाने जैसी समस्याएं आ रही हैं। किराए पर कोख देने की प्रथा को विनियमित करने के लिए किसी भी विधायी ढांचे के अभाव ने किराए की कोख देने संबंधी चिंताओं को बढ़ा दिया है। इसके कारणों व उद्देश्यों में कहा गया है कि इसके अलावा भी कई सारी समस्याएं हैं, जिनका समाधान किया जाना जरूरी है, जैसे—

1. किराए की कोख देने में विदेशी नागरिकों के शामिल होने की सूरत में बच्चों की नागरिकता,

2. विवाह-विच्छेद या किराए पर कोख देने का कार्य सौंपने वाले माता-पिता की मृत्यु की स्थिति में किराए की कोख से पैदा हुए बच्चे का भविष्य,

3. किराए पर कोख देनेवाली माता के अधिकार, और अन्य समस्याएं।

इस विधेयक का उद्देश्य उन शर्तों का भी निर्धारण करना है, जिसके तहत किराए पर कोख ली जा सकती है। इसमें किराए पर कोख देने का अनिवार्य पंजीकरण का उपबंध भी शामिल है। साथ ही किराए पर कोख देने में लिंग चयन को अपराध बनाना है।

विधेयक में यह भी प्रावधान किया गया है कि यदि किराए की कोख देने का कार्य सौंपने वाले माता-पिता अपने विवाह-विच्छेद, मृत्यु या किसी भी अन्य कारण से बच्चे को अपनी देखरेख में लेने में असमर्थ या विफल रहते हैं तो पहले से ही एक वैकल्पिक अभिभावक नियुक्त किया जाए जो बच्चे की देखरेख की जिम्मेदारी लें। साथ ही इसमें कहा गया कि भारत में किराए की कोख देने के माध्यम से पैदा हुए शिशु को देश में जैविक शिशु के रूप में प्रवेश की अनुमति दी जाएगी। विधेयक में यह भी कहा गया है कि यदि किराए पर कोख देने का कार्य सौंपने वाले माता-पिता ऐसे बच्चे में किसी भी जन्मजात विकृति या रोग के कारण बच्चे को लेने से इंकार करते हैं तो उन्हें साधारण कारावास जो 02 वर्षों से कम नहीं होगा या पच्चास हजार रुपये जुर्माना या दोनों से दण्डित किया जाएगा।

भारत में सरोगेसी व्यवस्था का मूल्यांकन करते हुए कहा जा सकता है कि नवीनतम अधुनातन प्रजनन तकनीकी की सहायता से निःसंतान दंपतियों के लिए अपने बच्चे की कल्पना अवश्य साकार हो रही है, परंतु इस संपूर्ण प्रक्रिया में किसी भी पक्ष के अधिकारों का हनन न हो, यह ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है। चूंकि सरोगेसी एक अत्यंत जटिल और उलझी हुई प्रक्रिया है, कानून को इस मुद्दे पर मौन नहीं रहना चाहिए।

यदि प्रजनन संवैधानिक हक है तो सरोगेसी से

संतान-सुख पाने वाले दंपति को भी कानूनी कवच मिलना चाहिए किंतु साथ ही सरोगेसी की अनुमति अपरिहार्य परिस्थितियों में ही दी जानी चाहिए। भारत जैसे देश में जहां मानवीय अंगों से लेकर पूरे का पूरा मनुष्य क्रय-विक्रय की वस्तु बन जाता है, वहां कोख को किराए पर देने की यह प्रक्रिया कहीं रोजमर्रा की वस्तु न हो जाए इसलिए इस पर नियंत्रण जरूरी है।

एक ओर जहां बांझ महिलाओं को इस तकनीक से सुख मिल रहा है, उनके घरों में भी बच्चे की किलकारी गूंज रही है तथा उनका सामाजिक अपमान भी मिट रहा है, दूसरी ओर वास्तविक मां को तमाम तरह के मानसिक-शारीरिक कष्ट झेलने पड़ रहे हैं। उसे अपनी निजी जिंदगी और निजी अस्मिता की लड़ाई भी लड़नी पड़ रही है। अपने रक्त मांस से 09 माह तक बच्चों को सींचने वाली मां से बच्चा जन्मते ही अलग करके निर्मम अनैतिकता की जा रही है।

अब समय आ गया है कि कानूनविद् इस विषय पर विचार करें। यह सही है कि प्रयोगशाला में भ्रूण बनाना और प्रत्यारोपित करना कानूनन वैध है। पर इस इलाके में खड़े डाक्टर, दलाल तथा ग्राहक कुदरत की ताकत और गरीब महिलाओं की देह व मन से खिलवाड़ न करें, इसके लिए अब एक सुविचारित विशेष कानून जरूरी है, वरना इस अपरिभाषित धूसर से प्रयोगशालाई जन्म तकनीकी पर तकलीफदेह नैतिक सवाल उठते रहेंगे और हजारों महिलाओं की कोख से जन्मे बच्चों का ममत्व छिनता रहेगा।

संदर्भ

1. द वीक, जून 13, 2010
2. हिंदुस्तान टाइम्स, जून 26, 2010
3. टाइम्स आफ इंडिया, जुलाई 21, 2010
4. द हिंदू, जुलाई 26, 2010
5. डेली टेलीग्राफ, अगस्त, 9, 2010
6. द न्यूर्याक टाइम्स, अगस्त 27, 2010
7. आउटलुक, साप्ताहिक, फरवरी 05, 2010
8. इंडिया टुडे, 7 जुलाई, 2010, 19 अगस्त, 2007
9. राजस्थान पत्रिका, 19 जुलाई, 2009, 5 सितंबर, 2007
10. भास्कर न्यूज, दिसंबर 2014
11. वन न्यूज, दिसंबर 2014
12. हिंदुस्तान, 19 जनवरी, 2014
13. किराए की कोख के अकथ रहस्य, मृणाल पाण्डेय, 14 दिसंबर, 2012
14. बरेली मरकज के दारूल इफ्ता का फतवा
15. बी.बी.सी. न्यूज, 1 अक्टूबर, 2013
16. प्रचीन भारत का इतिहास, ले.-विमल चंद पांडेय
17. इण्टरनेट पर उपलब्ध सामग्री
18. दैनिक हिंदुस्तान, नवभारत टाइम्स, नवंबर, 2014
19. भारतीय समाज में सरोगेसी—डा. प्रतिभा, 2012

चौकीदार : सुरक्षा में कितना भागीदार

आशीष जायसवाल
डी1-ए/115 (डी ब्लाक) जनकपुरी,
नई दिल्ली-110058

अनादि काल से प्रत्येक देश और प्रत्येक जनजाति में देवासुर-संग्राम होता चला आया है। निर्बल और निःसहाय वर्ग को उत्पीड़ित करना बलवान और साधन-संपन्न समाज ने अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझा है। भारतवर्ष ग्रामों में बसा हुआ है और यहां के ग्राम अन्य देशों के ग्रामों से बिलकुल भिन्न तथा अभी तक साधनहीन हैं। अधिकतर ग्रामों में बिजली जैसी कोई चीज नहीं है और न उन तक पहुंचने के लिए सड़कें ही बनी हुई हैं। ग्रामवासी अपने जेवर, कपड़े तथा धन-दौलत अनाजों के कुदलों, दीवारों तथा जमीनों में दबाकर रखना ही सबसे अधिक सुरक्षित समझते हैं। उनकी यह आदतें सर्वविदित हैं। यद्यपि अब राष्ट्रीयकृत बैंकों ने सारे देश में अपनी शाखाओं का जाल-सा बिछा दिया है तथापि गांव वाले बैंकों में जाने और अपना अतिरिक्त धन बैंकों के खाते में जमा करने से अब भी कतराते हैं। नतीजा यह है कि वह ईश्वर पर आश्रित रहते हैं और चारों ओर से असुरक्षित हैं।

जमीन-जायदाद के संबंध में मुकदमेबाजी रहती है और आसपास में शत्रुता के अंबार जमा हो जाते हैं। कोई भी दुश्मन किसी भी गिरोह को बुलाकर अपने शत्रु के यहां डकैती डलवा सकता है और गड़ी हुई संपत्ति का भी सुराग दे सकता है। जिस समय डकैती पड़ती है, हर एक को अपनी जान बचाने की फिक्र होती है। अधिकतर लुटेरे आग्नेय शस्त्रों से सुसज्जित होते हैं और गांवों में घुसते ही फायर करके सारे गांव में भय तथा आतंक का वातावरण उत्पन्न कर देते हैं। मारपीट तथा लूटपाट के मध्य किसी को क्या होश रह सकता है कि वह डकैतों को अच्छी तरह से पहचान सकें। इस संबंध में एडमंड काक्स ने अपनी पुस्तक 'विलेज क्राइम इन इंडिया' में कई दशक पूर्व लिखा था—

"डकैती की अपराध-विवेचना में बहुत अधिक कठिनाइयां हैं और मुझे सदा ही आश्चर्य हुआ कि यह विशेष लाभदायक अपराध और अधिक क्यों नहीं किया जाता? डकैती का घटनाचक्र और माहौल इतना डरावना होता है कि जिस घर में डकैती पड़ती है उसके रहने वाले इतना अधिक घबरा जाते हैं कि अपराधियों का ठीक से अनुमान नहीं लगा सकते हैं ताकि उनकी शिनाख्त हो सके। मेरे विचार से विलायत के किसी गांव में भी (जो अधिकतर बिजली की रोशनी से जगमगाते रहते हैं) आधी रात के समय किसी पर डकैतों द्वारा धावा बोले जाने पर कम आतंक नहीं छाता। डरपोक घर वाला और उसके परिवार के अन्य सदस्य बंदूकों की गोलियों की आवाजों, गलियों और दरवाजों पर लाठियों के प्रहार से हड़बड़ा कर जाग जाते हैं।

ऐसी भयावह स्थिति में उनका केवल एक ही लक्ष्य होता है कि किसी प्रकार अपने आपको छिपा लें परंतु यह असंभव है। दरवाजा तोड़ दिया जाता है, घरवालों को उनके छिपने के स्थान से ढूंढ़कर निकाल लिया जाता है और उस समय तक बेरहमी से पीटा जाता है कि जब तक वे अपनी धन-संपत्ति का अता-पता नहीं बता देते। जब पुलिस छानबीन करती है तो घर तथा गांव वाले इतने डरे हुए होते हैं कि वे न तो डकैतों का हुलिया ही सही बता पाते हैं और न ही पूरे मामले में पूरी जानकारी ही दे पाते हैं।"

देश की 80 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या सवा छह लाख गांवों में रहती है। इन लोगों की जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिए प्रभावी ग्रामीण पुलिस-व्यवस्था जरूरी है। प्रारंभ में सन् 1861 में जन संगठित पुलिस बनी थी तभी से पुलिस-संबंधी कार्यनीति में शहरों की ओर अधिक ध्यान दिया जाता रहा है।

कई पुलिस आयोगों, विभागीय समितियों और विशेषज्ञों ने इस समस्या का अध्ययन किया है और समय-समय पर सुझाव दिए, ताकि ग्रामीण-व्यवस्था को प्रभावी बनाया जा सके। कुछ राज्यों में इस संबंध में कार्रवाई भी की गयी है और इससे हमारी पुलिस की कार्यकुशलता और प्रभावशीलता पर कोई असर नहीं पड़ा। संगठित पुलिस को देहाती क्षेत्रों में पुलिस-व्यवस्था के लिए उत्तरदायी बनाया जाए। यह व्यवस्था उसी पैमाने और ढांचे के अनुसार होनी चाहिए जिस प्रकार की व्यवस्था शहरी क्षेत्रों में है।

सुरक्षा में भागीदार

रात के सन्नाटे में जब पूरा गांव निद्रा में निमग्न होता है, रात की नीरवता को चीरती हुई एक आवाज आती है 'जागते रहो'। यह आवाज किसी और की नहीं बल्कि गांव के पहरेदार की है।

चोर, उचक्कों से लेकर डाकुओं के खतरे के प्रति गांववालों को सजग करनेवाला यह पहरुआ अपने निजी जीवन में कितना निःसहाय व बेबस है, शायद इसका अंदाजा किसी और को नहीं है। तन पर पुराने फटे कपड़े और उनको ढकता हुआ वह एक अदद पुराना तीन साल का खाकी कुरता। हाथ में डंडा लिए, हड्डी छू लेने वाली सर्दी-गर्मी व बरसात में महीने-भर की ड्यूटी बजाने के लिए ग्रामीण चौकीदार को 21वीं सदी की ओर मुंह किए बैठी हमारी सरकार क्या देती है, 22 रु. 50 पैसा। जी हां, यह उसका मासिक वेतन है। अब इस राशि को बढ़ाकर 100 रुपये कर दिया गया है।

गांव की हर एक अच्छी-बुरी खबर से लेकर गांव वालों की आपसी रंजिश व राजनीति से थाने को वाकिफ कराने वाला चौकीदार आज सरकार का सबसे उपेक्षित कर्मचारी है। अंग्रेज़ों के जमाने में गांव व थाने के बीच एक कड़ी के रूप में काम करते आ रहे चौकीदार गुलामी से बढ़कर ज़िंदगी जी रहे हैं। पूरे उत्तर प्रदेश में इस समय 60 हजार से अधिक चौकीदार हैं, जो भुखमरी के शिकार हैं। पुलिस से जुड़े इन चौकीदारों को सरकार जितना वेतन दे रही है उतना थाने का एक सिपाही तंबाकू, सिगरेट पर खर्च कर देता है। उस पर थाने की धौंस और सिपाहियों की झिड़की अलग।

सरकार की तरफ से इन्हें तीन साल में एक जोड़ी जूता, एक कोटनुमा कुरता, सिर पर एक साफा मिलता है। इसके अलावा पूरी सर्विस के दौरान एक बेल्ट और एक लाठी सरकार देती है। जो नौकरी से हटाये जाने पर लौटानी पड़ती है।

चौकीदारों को जो पगार मिलती है वह भी थाने से ही मिलती है इसलिए महीने की पगार पाने के लिए उन्हें दसियों चक्कर थाने के काटने के साथ ही थानेदार व मुंशियों की चापलूसी भी करनी पड़ती है। अक्सर थानों पर चौकीदार से चपरासी की भांति काम कराया जाता है मसलन थाने में झाड़ू-बुहारु, चाय-पानी लाना-ले जाना, घास काटना और सबकी जी-हजूरी करना। इन्हें पगार व यात्रा-भत्ता कभी समय पर नहीं मिलता है। वक्त पर महीने की कमाई के पैसे मिल जाएं तो सब्र करें।

हालत यह है कि ये चौकीदार न तो अपनी नौकरी ही ठीक से कर पाते हैं और न ही इसे छोड़ पाते हैं। रात-भर गांव की पहरेदारी करने के बाद ये दिन में गांववालों की मजदूरी करते हैं और जो कुछ वहां मजदूरी मिलती है उसी से अपने परिवार का गुजारा करते हैं। कोई जरूरी नहीं कि ये जिस गांव के रहने वाले हैं वहीं की चौकीदारी करें। यह तो थाने पर निर्भर करता है कि किसकी नियुक्ति कहां हो? थानेदार अगर खुश है तो ठीक है, नहीं तो दूसरे गांव में भी पहरा देना पड़ता है।

अंग्रेजों के समय में चौकीदारों को 5/- रु. माहवारी मिलती थी। आज़ादी के इतने साल बाद भी इनका वेतन 100 रु. से आगे नहीं बढ़ा। जबकि अन्य सरकारी विभागों में, जिनको उस समय 100/- मिलते थे, वे आज 1500/- से 2000/- तक पा रहे हैं।

चौकीदारों की नियुक्ति जिलाधिकारी करते हैं। इनकी कोई न्यूनतम योग्यता नहीं होती है परंतु नियुक्ति

के समय इनकी उम्र 18 से 35 वर्ष के बीच होती है। इनकी सेवा-निवृत्ति का कोई निश्चित समय नहीं होता है और न ही सेवा-समाप्ति के बाद सरकार इन्हें कुछ देती है। सरकारी सेवकों का लेबल लगाये ग्रामों के चौकीदार पूरी ज़िंदगी सरकार को कुर्बान कर देते हैं।

नौकरी की अवधि में यदि मरते हैं तो मर जाते हैं। प्रदेश शासन इनके परिवार को कुछ नहीं देता है। हां, परिवार के सदस्यों में यदि कोई चौकीदार बनना चाहे तो उसे उसके बदले तैनात कर दिया जाता है। यह है शोषण का न टूटने वाला सिलसिला। चौकीदार अपने हक के लिए सरकार से लड़ भी नहीं सकते, क्योंकि ये थाने से इस प्रकार बंधे रहते हैं जैसे किसी 'खूंटे से बकरी'। इनका भला-बुरा थाने पर ही निर्भर करता है। कुल मिलाकर ये चौकीदार केवल गांवों के लिए ही जीवित रहे हैं, अपने लिए जीने का इन्हें कोई हक नहीं है। अगर इतने पर भी सरकार 21वीं सदी में जाने को तैयार है तो ये बेचारे भी पीछे-पीछे चलेंगे ही।

ग्रामीण पुलिस के बीच संपर्क-सूत्र का काम करने वाली 'गांव की पुलिस' की आज शायद किसी सत्ताधारी को चिंता नहीं है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि ग्रामीण चौकीदार पुलिस और ग्रामीण के बीच महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि सरकार ने इस कड़ी को मजबूत बनाने का ईमानदारी से प्रयास किया होता तो गांवों में चोरी, डकैती तथा लूट की घटनाओं पर एक बड़ी हद तक काबू पाया जा सकता था। चौकीदारों की सुख-सुविधा की चिंता किए बगैर अंग्रेजों ने इनके सिर पर जिम्मेदारियों का बोझ जिस कदर डालकर शोषण का सिलसिला शुरू किया था, वह आज भी जारी है। इसमें सिर्फ एक ही परिवर्तन हुआ है वह यह कि स्वतंत्रता पूर्व का इनका पांच रुपया प्रतिमाह का वेतन अब 100 रुपये कर दिया गया है। भला यह भी कोई वृद्धि हुई है? दूसरी ओर अब इन चौकीदारों की जिम्मेदारियों की तरफ भी थोड़ा ध्यान दें तो ऐसा लगेगा कि ये सरकारी बंधुआ मजदूर हैं। उ.प्र. के पुलिस एक्ट 16 सन् 1873 की धारा 3 से 6 तथा अवैध कानून एक्ट 1876 की धारा 29 से 32 के अनुसार जिलाधीश द्वारा गांवों में चौकीदार की नियुक्ति का प्रावधान है। इस एक्ट की धारा 89 के अनुसार चौकीदार गांव का सेवक होता है। उसका महत्वपूर्ण कार्य अपने गांव में पहरा देना है। ग्रामवासियों द्वारा प्रदत्त सूचनाओं को थाने पर पहुंचाना, अपराधियों की खोजबीन में पुलिस की मदद करने की जिम्मेदारी उसे कानूनी तौर पर जिलाधीश के सम्मुख उत्तरदायी बनाते हैं। एक्ट की धारा 90 में हिदायत है कि उन्हें अपने हल्के से संबंधित गांव में रहना चाहिए। साथ-ही-साथ यह भी कि पुलिसकर्मियों को चौकीदारों से अपना काम या अन्य छोटे-मोटे काम नहीं लेने चाहिए। धारा 92 में उन वस्तुओं को दिए जाने का ज़िक्र है जिनका उपयोग चौकीदार को करना पड़ता है, जैसे— जन्म-मृत्यु रजिस्टर, अपराधों को लिखने के लिए किताब आदि। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा इन्हें एक लाठी, पगड़ी, बेल्ट तथा टार्च दिए जाने का प्रावधान किया गया है। अब यह अलग बात है कि चौकीदारों को उपर्युक्त सामान सही मिल जाते हैं या नहीं।

धारा 93 यह निर्देश करती है कि जब भी पुलिस का कोई व्यक्ति सरकारी काम के लिए सहायता मांगे तो चौकीदार उसकी मदद करे। धारा 94 तथा उसकी पांच उपधाराओं में अधिकारियों के कैंप के समय पहरा, राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री के आगमन के समय उनकी स्पेशल ट्रेन की निगरानी की जिम्मेदारी का वर्णन है। इसके अतिरिक्त कार्य के लिए वेतन के अतिरिक्त 6 आने तथा अस्थाई चौकियों को एक रुपये के हिसाब से भुगतान पर नियुक्ति का अधिकार पुलिस महानिरीक्षक को प्राप्त है।

धारा 95 के अनुसार ऐसे अपराधों की लिखित रिपोर्ट के लिए जो पुलिस के हस्तक्षेप योग्य हो तथा चोरी के माल की सूची के लिए फार्म नंबर 44 गांव के चौकीदार को इस निर्देश के साथ दिया जाना वांछित है कि जब कोई उनसे इस फार्म को लिखकर उसमें हस्ताक्षर करके उसे

थाने पर ले जाने को कहे तो वह ले जाए।

धारा 56 में चौकीदार की नियुक्ति का आधार, जिसका वर्णन ऊपर किया गया है, तथा उसकी बर्खास्तगी का जिक्र है। इसके अनुसार एक्ट 16 सन् 1873 की धारा 10, एक्ट 1876 की धारा 36 के अनुसार चौकीदार को जिलाधीश द्वारा पदच्युत किया जा सकता है।

देहात के चौकीदार पर एक्ट 16 सन् 1873 की धारा 11 या एक्ट 1876 की धारा 37 के आधार पर फौजदारी का अभियोग भी चलाया जा सकता है तथा नेकचलनी के बिल्ले तथा भत्ता जब्त हो सकते हैं।

इसके अतिरिक्त अध्याय 12 में गांव या उसके पास अचानक या असाधारण अवस्था में हुई मौतों की सूचना चौकीदार द्वारा थाने पर देने का आदेश है।

इसी के साथ अध्याय 25 में जन्म-मृत्यु की सूचना एकत्र करना तथा उसे ग्राम प्रधान तक पहुंचाना और सरकारी नौकर, सिपाही या किसी विदेशी की मृत्यु हो जाने पर उसकी सूचना थाने पर पहुंचाने का आदेश चौकीदार को है।

इसी तरह अध्याय 20 में बदमाशों की निगरानी के सबंध में चौकीदारों की जिम्मेदारी का उल्लेख है। इसके अनुसार गांव के बदमाशों की अनुपस्थिति तथा बहिरागत लोगों के संबंध में जानकारी हासिल करना भी उसकी जिम्मेदारी है। संदिग्धावस्था में पुलिस को सूचना देने का भी काम उसके जिम्मे है।

इतनी सारी जिम्मेदारी से घिरा चौकीदार खाली पेट कहां तक सफल हो सकता है।

बिना वेतन के चौकीदार द्वारा गांव का पहरा देने का नियम क्या हर गांव के एक व्यक्ति से जबरन बेगार कराने जैसा नहीं है? आश्चर्य तो तब होता है जब सरकार बेगार कराने वालों के खिलाफ कानून बनाकर आज भी ख़ुद बेगार कराने पर तुली है।

थाने में पुलिसकर्मियों द्वारा गैरकानूनी तरीके से चौकीदारों का शोषण किसी से छिपा नहीं है। इससे उनका मनोबल टूटता है। दूसरे पुलिस भी इन्हें एक गौण वस्तु मानकर चलती है। पुलिस की अपराधियों से सांठ-गांठ होने की वजह से चौकीदारों द्वारा उनके विरुद्ध दी गई सूचना कोई अर्थ नहीं रखती। इस वजह से भी उनमें निराशा और निष्क्रियता आती है।

ग्रामीण सुरक्षा के सिलसिले में यह कहना अनुचित न होगा कि अगर हर गांव में रात्रिकालीन पहरे की व्यवस्था को व्यावहारिक रूप दे दिया जाए तो अपराधों को काबू में लाया जा सकता है। इसके लिए एक महत्वपूर्ण सुझाव यह हो सकता है कि गांव के चौकीदारों को उचित वेतन दिया जाए, जिससे वे अपने परिवार का भरण-पोषण करने के साथ अपनी जिम्मेदारियों के प्रति सजग रहें। ऐसा करने से उत्तर प्रदेश में ही लगभग 75 हजार से अधिक लोगों को रोजगार मिल जाएगा। यद्यपि इसमें भारी खर्च आ सकता है। इनकी आंतरिक सुरक्षा बनाए रखने के लिए सरकार को एक न एक दिन कदम उठाना ही होगा।

आंकड़े बताते हैं कि अंग्रेजों के राज्य में उ.प्र. में पुलिस-व्यवस्था पर दो करोड़ पचास लाख रुपया खर्च होता था जबकि आज का खर्च 75 करोड़ से अधिक नहीं है। कारण स्पष्ट है। इतना पैसा व्यय करने के बावजूद अपराधों में कहीं कोई कमी नहीं आयी है। गांव की पुलिस उपेक्षित है, थानों में दलाली हो रही है।

एक बात और, पुलिस एक्ट के अध्याय 20 धारा 273 में उल्लिखित यह वाक्य कि गांवों में जो कार्य चौकीदारों को सौंपा गया है, शहरों और कस्बों में वह पुलिस द्वारा किए जाएंगे, ग्रामीणों को बेवकूफ बनाने जैसा ही लगता है। सवाल यह है कि जब शहरों में उसी कार्य के लिए वेतनभोगी पुलिस तैनात है तो समान कार्य के लिए गांव के चौकीदारों का शोषण कहां तक जायज है? 'गांव की पुलिस' का उत्थान आज की परिस्थितियों के संदर्भ में एक अनिवार्य आवश्यकता है।

विकासशील प्रणाली में ग्राम वाला

आधुनिक विकासशील प्रणाली में राष्ट्रीय सुरक्षा का अत्यंत महत्व है। राष्ट्रीय सुरक्षा दो प्रकार की होती है। पर-राष्ट्रों द्वारा आक्रमण, या कुछ के विरुद्ध स्वराष्ट्र की सुरक्षा-पंक्ति द्वारा रक्षा-कार्रवाई करना तथा आंतरिक विप्लवी तत्वों, डाकुओं तथा अपराधशील असामाजिक तत्वों के विरुद्ध सामान्य जनजीवन को सुरक्षित तथा सामान्य बनाए रखना। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात बाह्य सुरक्षा के अतिरिक्त आंतरिक सुरक्षा ने भी एक नया मोड़ लिया है, क्योंकि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के मामलों में न केवल सैनिक शक्ति द्वारा हस्तक्षेप करता है वरन् वह आंतरिक व्यवस्था को भी अनेक प्रकार से झकझोर देता है।

मध्य एशिया, अफ्रीका तथा पूर्वी यूरोप के बहुत से राष्ट्र समय-समय पर इस दुर्दशा से ग्रसित हुए हैं। हमारे देश में भी ऐसे प्रयास हुए हैं तथा आज भी हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त देश में और विशेषतया उ.प्र. में राष्ट्रीय चरित्र में इतनी गिरावट आयी है कि दिनो-दिन अपराधों में वृद्धि हो रही है। इस अपराध-वृद्धि से सारा राजनीतिक प्रशासन तथा सामान्य जन-जीवन त्रस्त तथा चिंतित है। परंतु किसी विषय में मात्र चिंता करना उसका हल नहीं है। इस अपराध-वृद्धि के कारणों को समझकर हमें उनका विश्लेषण तथा निदान करना चाहिए।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद विकास के अलग-अलग काम बहुत हुए, लेकिन राष्ट्र-निर्माण, समाज-निर्माण और ग्राम-निर्माण का समग्र कार्यक्रम नहीं बनाया गया। गांव को एक इकाई के रूप में न देखकर उसे केवल घरों का समूह माना गया और अलग श्रेणी के कामों के लिए राहत और मदद की अलग-अलग स्कीमें सोची गयीं। केवल फुटकर स्कीमों के जोड़ से समग्र योजना नहीं बनती है।

हम सहकारी समिति बनाते हैं किंतु गांवों को शहर के अस्तित्व की इकाई न मानकर ग्राम-समुदाय को सहकारी दिशा में ले जाने वाली समग्र योजना नहीं बनाते। हम बच्चों, युवकों, महिलाओं और प्रौढ़ों के लिए अलग-अलग शिक्षण-कार्यक्रम सोचते हैं, परंतु पूरे गांव को स्वयं एक विद्यालय मानकर जीवन-शिक्षण की योजनाएं नहीं सोचते ताकि गांव के संपूर्ण जीवन के साथ शिक्षण का अनुबंध हो और शिक्षण ही विकास की एक प्रक्रिया बने। हमारे सारे चिंतन में यह बात समाई हुई है कि गांव, समाज और देश अलग-अलग स्तर पर परस्पर विरोधी हितों के अखाड़े हैं और सरकार का काम लड़ने वालों के बीच जज बनकर बैठे रहना और कानून बनाते जाना है। इतने वर्षों के अनुभव से वह दृष्टि सर्वथा गलत सिद्ध हो चुकी है।

हमें अब यह मान लेना चाहिए कि विकास की अनेक योजनाओं के बावजूद गांव में 'योजना' नाम की कोई चीज नहीं है, कोई व्यवस्था नहीं है। पुलिस है लेकिन सुरक्षा नहीं है। अदालतें हैं लेकिन इंसाफ नहीं है। विद्यालय हैं लेकिन वे दुराचार के दीक्षालय बन गए हैं। समाज किसी तरह गिरता-पड़ता अपने संस्कारों पर चलता आ रहा है। पंचायतें भी दलबंदी का अखाड़ा बनकर रह गयी हैं।

अपराध-वृद्धि क्यों?

अपराध में वृद्धि के अनेकानेक कारणों में जनसंख्या में वृद्धि, आवागमनों के साधनों का विस्तार, गरीबी, राजनीति, सिनेमा, शिक्षा का अभाव, पुराने कानून, दंड की उचित व्यवस्था का न होना, भ्रष्ट न्यायपालिका, पुलिस का दकियानूसी रवैया तथा छात्रों में बढ़ती हुई अपराधी मनोवृति होना है। ऐसी दशा में अपराध न केवल बढ़े हैं वरन् उनका रूप भी व्यापक हुआ है। अमृतसर में हुई वारदात का असर कलकत्ता व मद्रास में भी पड़ता है। इस दिशा में समाचार-पत्रों द्वारा उपद्रव दबाने के बजाय और उभाड़े जाते हैं, क्योंकि अधिकांशः संवाददाता केवल कल्पनाशक्ति के बूते पर यदा-कदा कपोलकल्पित समाचार लिख देते हैं, जिससे विपरीत असर पड़ता है। यह बात

विशेषतया छात्र-असंतोष के संबंध में सत्य है।

अपराधों के बढ़ने का एक विशेष कारण यह है कि अधिकांश मुकदमों में अपराधियों को जमानत पर छोड़ दिया जाता है। आज लगभग 100,000 अपराधी जमानत पर हैं, जिनमें से 29,000 अपराधी केवल डकैती से संबंधित हैं। जो जमानत पर आता है, वह वकील की जेब भरने के लिए लगातार अपराध करता है तथा कराता है। हमें इस विषय पर गंभीरता से सोचना चाहिए।

वर्तमान में हमारे देश में छात्र-असंतोष के कारण भी अपराधों में वृद्धि हुई है। छात्रों का झुकाव तुरंत धन आहरण करने के लिए दिनो-दिन अपराधों की ओर बढ़ रहा है। अधिकांश तोड़-फोड़ व मारपीट उनके दिशाहीन नेतृत्व का बोध कराती है तथा यह भी दर्शाती है कि देश में रचनात्मक दृष्टिकोण की कितनी कमी है।

गांव का वातावरण, जमीन-जायदाद के झगड़े तथा आपसी रंजिश से बदमाशों को पनाह देने की मनोवृत्ति ने भी अपराधों को बढ़ावा दिया है। एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद, इटावा, भिंड तथा अन्य अपराधशील जनपदों में आतंक का मुख्य कारण यही वृत्ति है। गांवों में दिए गए असलहों का भी सही उपयोग नहीं होता।

ऐसी स्थिति में ग्रामीण मनोमालिन्य से तथा दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए अपराधों से त्रस्त होते जा रहे हैं। ऐसे समय में यह आवश्यक है कि हम अपने गांवों को सुदृढ़ तथा सुरक्षित रखें और देश को प्रगति की ओर अग्रसर करें।

वर्तमान ग्राम्य पुलिस-व्यवस्था

एक विचार यह भी है कि देहाती पुलिस एजेंसी को गांव वालों के स्वैच्छिक संगठनों जैसे कि ग्राम-पंचायतों के अधीन कर देना चाहिए। कुछ का विचार है कि यह काम ग्रामीण होमगार्डों को सौंप दिया जाए। परंतु इस सबके ठोस परिणाम नहीं निकले हैं। पुलिस साइंस कांग्रेस के वार्षिक सम्मेलन में भी इस विषय पर विचार-विमर्श हुआ। इन सुझावों को लागू करने में भारी खर्चा होगा।

पुलिस अनुसंधान और विकास कार्यालय ने ग्रामीण इलाकों में पुलिस-व्यवस्था की योजना का अध्ययन किया। इस अध्ययन में पांच ग्रामीण पुलिस स्टेशनों महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार में एक-एक ग्रामीण पुलिस स्टेशनों से मूल आंकड़े एकत्र किए गए कि वास्तव में पुलिस-व्यवस्था किस प्रकार कार्य करती है और इसका क्या प्रभाव पड़ता है? कुछ पुलिस महानिरीक्षकों को इस संबंध में एक प्रश्नावली भेजी गयी, जिससे जानकारी प्राप्त की जा सके। पुलिस आयोगों और विशेष समितियों की रिपोर्टों से भी आंकड़े प्राप्त किए गए। अंत में कुछ वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों से विचार-विमर्श किया गया है।

स्वतंत्रता- प्राप्ति के बाद से ही यह महसूस किया गया था कि पुलिस-व्यवस्था को एक नया रूप दिया जाना चाहिए। राजशाही में पुलिस की व्यवस्था इस प्रकार की गयी थी कि इससे उस समय के शासकों की जरूरतें पूरी हो सकें। कुछ व्यक्तियों का विचार था कि बड़े और छोटे शहरों में पुलिस के प्रयोग में भेदभाव है और उन्होंने यह आग्रह किया कि ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में पुलिस की व्यवस्था एक ही प्रकार की होनी चाहिए, क्योंकि जीवन और संपत्ति की सुरक्षा करना पुलिस का कर्त्तव्य है। सामाजिक कानूनों के पालन में पुलिस को अपनी भूमिका अदा करने पर भी बल दिया गया।

गांवों में बढ़ती हिंसा

अंधेरा हो जाने के बाद बहुत जरूरत पड़ने पर ही कोई गांव वाला अपने गांव से बाहर जाता होगा। रातों को लोग बाहर बरामदे में नहीं सोते, किसान रखवाली करने वाले खेत में नहीं जाता। आये-दिन पड़ोस के किसी गांव से हत्या, डकैती या बलात्कार की खबर आती है। जगह-जगह पुलिस भी है लेकिन स्थिति में कोई फर्क भी नहीं है। पूरे क्षेत्र में आतंक छाया हुआ है।

हर एक मानव राजपूत बनाम यादव या अन्य के संघर्ष की चर्चा करता है और कहता है कि अभी क्या हुआ है इससे अधिक होगा।

यह कोरी कहानी नहीं है। यह प्रत्यक्ष जीवन है जिसे बिहार के क्षेत्र में लाखों लोग जी रहे हैं। उपद्रव, अपराध व आतंक के क्षेत्र अब बिहार में अपवाद नहीं रह गए हैं। उनकी संख्या अब दिनो-दिन बढ़ती ही जा रही है। बहुत कम गांव बचे होंगे जिनमें हिंदू, मुसलमान या बैकवर्ड, सवर्ण व असवर्ण या आदिवासी में खुला संघर्ष या तनाव न हो और समय-समय पर टकराव न हो जाता हो। सवाल यह है कि हिंसा अब घटना नहीं रह गयी है, बल्कि हिंसा करना एक शैली बन गया है। कोई भी विवाद हो, वह आपस की चर्चा से या पंचों के फैसले से हल हो सकता है, यह विश्वास लोगों के दिल से उठ गया है। बात-बात में लाठी, बम, पिस्तौल निकल आते हैं। पुलिस तथा अदालत की धमकी दी जाती है। लगता ही नहीं कि कहीं कानून है, व्यवस्था है, समाज की कोई मर्यादा है या उचित-अनुचित या विवेक है। कोई कुछ भी करे, किसी पर कोई नियंत्रण नहीं रह गया है।

इतनी बड़ी पुलिस रखने वाली सरकार भी पंगु बन गयी है। लोगों के अंदर यह बात बैठ गयी क न्याय बिकाऊ है और पुलिस खरीदी जा सकती है। जब सदियों में विकसित आपसी संबंध काम करना बंद कर देते हैं तो कोरा कानून असहाय हो जाता है और वह समर्थ के स्वार्थ का साधन बन जाता है।

बिहार के ग्रामीण जीवन पर भी ईस्ट इंडिया कंपनी के उस जमाने की गहरी छाप है, जब लगान वसूल करनेवाले ठेकेदार घोड़ों और हाथियों पर बैठकर अपने लठैतों के साथ निकला करते थे। 18 वीं शताब्दी के अंत में कंपनी ने उन्हीं ठेकेदारों के साथ इस्तमरारी बंदोबस्त किया और उन्हें जमींदार बना दिया। इस बंदोबस्त में ये नए मालिक रियाया का लगान तो बढ़ा सकते थे लेकिन सरकार की मालगुजारी नहीं बढ़ सकती थी। इस छूट से जमींदारों का जुल्म और लूटखसोट के लिए रास्ता साफ हो गया था। वे मालिक तो बने ही साथ-ही-साथ अपनी जमींदारी में सरकार भी बन गए। जमीन के सब कागज उनके पास ही रहते थे। बटाईदारों को जमीन ये बिना लिखा-पढ़ी के देते थे और जब जिसे चाहते बेदखल करते थे। उनके लठैतों के लिए कुछ भी मना नहीं था। बिना एक पैसा पूंजी लगाये मालिकों के घर में बटाई का अनाज आता था, जिससे वे और उनके परिवार मौज की जिंदगी बिताते थे।

किसी नए कानून को लागू करने के लिए मंत्रियों और अधिकारियों में जो संकल्प होना चाहिए और जो व्यवस्था होनी चाहिए वह हो नहीं पाती तो लोगों में आपसदारी का वातावरण कैसे बनेगा। खेतिहर समाज में समाज की संपूर्ण संस्कृति से भूमि की व्यवस्था के बुनियादी संबंध हैं। हम हर तरह का परिवर्तन चाहते हैं लेकिन पुराने को ज्यों का त्यों रखना चाहते हैं।

हिंसा की नई राजनीति

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद राजनीति मुक्ति की लड़ाई न रहकर क्रमशः दलों की आपसी सत्ता की लड़ाई बनती गयी और इसका सामाजिक आधार सिकुड़ता गया। दलों ने सामान्य जनता को छोड़कर अलग-अलग जातियों और संप्रदायों के वोट को अपना बनाकर रखने की कोशिश की। पिछले कुछ वर्षों में तो वोट की चिंता छोड़कर बड़े पैमाने पर 'बूथ' की लूट का सहारा लिया गया है और मतदाता-विहीन मतदान की एक अनोखी पद्धति विकसित की गयी है।

जब लूट की जरूरत पड़ी तो नेताओं ने लुटेरों की तलाश की और अब लुटेरे अपना महत्व देखकर खुद उम्मीदवार बनकर नेता बन गए हैं। ऐसा क्यों न हो, जब राजनीति चुनाव के सिवा और न कुछ रह गयी हो। स्वभावतः ऐसा चुनाव बम और बंदूकों से लैस जाति-संघर्ष और खुला अपराध बन गया है। पंचायत से लेकर संसद तक के चुनावों का यही हाल है। चुनाव में एक बार हिंसा शुरू हो जाती है, तो वह लोगों के मन में बैठी

रहती है और अवसर पाकर अलग-अलग रूपों में प्रकट होती है।

जब देश की सरकार बनाने की प्रक्रिया संगठित अपराध बन जाए और राजनीति को 'बिजनैस' माना जाने लगे, तो मान लेना चाहिए कि राष्ट्र के जीवन में बर्बरता का एक नया चरण शुरू हो चुका है। गांव के लोग चुनाव की व्यवस्था को राजनीतिक अपराध-व्यवसाय के गठबंधन के ही रूप में देख रहे हैं। 1942 में उन्होंने कई जगहों पर स्वतंत्रता के नाम पर होने वाली लूट-पाट हिंसा देखी थी। बाद को 1946-47 में धर्म के नाम पर हिंदू-मुस्लिम दंगे देखे। अब नयी राजनीति भी उनके सामने क्या खूब नमूना रख रही है। सिवा इसके कि राजनीति मात्र एक लड़ाई या व्यापार है, जिसमें अपना काम बनाने के लिए जो कुछ किया जाए वह सब जायज है।

पहले हम यह तो तय करें कि राष्ट्र और समाज के निर्माण की दृष्टि से हम गांव का क्या भावी स्वरूप देखना चाहते हैं। क्या अब भी इसका समय नहीं आया है कि गांधी की बातों को याद करके गांव को एक स्वायत्त इकाई का रूप देने की योजना बनाई जाए ताकि एक-एक गांव में विकेंद्रित लोकतंत्र और भाईचारे की जीति-जागती हिंसामुक्त जीवन-नीति विकसित हो सके तथा आगे चलकर ऐसी ही इकाइयों के प्रतिनिधित्व के आधार पर पूरे राष्ट्र की व्यवस्था की जा सके।

नियोजन का प्रयोजन—नई पुलिस-व्यवस्था

इन विकसित गतिविधियों के काण ग्रामीणों के मन पर प्रभाव पड़ेगा और वे शहरों की ओर नहीं आएंगे। कुछ निहित स्वार्थ सरकार के गरीब और पिछड़े वर्ग के लोगों के उत्थान के प्रयासों को विफल कर रहे हैं। अतः आवश्यकता है कि अब देहाती क्षेत्रों में पुलिस-व्यवस्था की ओर गंभीरता से ध्यान दिया जाए।

बेहतर पुलिस-व्यवस्था को लागू करने की कार्रवाई में दो बातों को ध्यान में रखना होगा। पहला यह है कि सामाजिक तनावों में समृद्धि और सत्ता के विकेंद्रीकरण से गांवों में अपराधों की संख्या में वृद्धि हो सकती है। अपराध करने के तरीकों में भी परिवर्तन की संभावनाएं हैं।

देहाती इलाकों में समृद्धि और सामाजिक तनावों और राजनीतिक जागरूकता के कारण कानून और व्यवस्था की समस्याओं के बढ़ने की आशंका है। पुलिस को थोड़े समय में ही इन परिस्थितियों से निपटने के लिए ही तैयार रहना होगा। पुलिस की सफलता गुप्त ढंग से जानकारी एकत्र करने पर निर्भर करेगी। पुलिस इन सूचनाओं के आधार पर उचित कार्रवाई कर सकेगी।

क्या वर्तमान ग्रामीण पुलिस-व्यवस्था इन चुनौतियों का मुकाबला कर सकती है? क्या वर्तमान देहाती पुलिस स्टेशन नई चुनौतियों का मुकाबला कर सकेंगे और उनके पास ऐसे साधन हैं, जिनसे वे प्रभावशाली ढंग से कार्य करें? क्या यह कार्य पंचायतों के अधीन स्वैच्छिक संगठनों को सौंपा जा सकता है?

ग्रामीण-व्यवस्था का विकल्प क्या है

विकल्प यही है कि पारंपरिक व्यवस्था को बनाये रखा जाए परंतु यह पुलिस-व्यवस्था कमजोर व अकुशल है। स्थानीय जानकारी और स्थानीय आबादी से निरंतर संपर्क होने के कई लाभ हैं, जिनकी आसानी से उपेक्षा की जा सकती है। भारत उस खर्च को नहीं उठा सकता। यदि गांव में भी उसी प्रकार की पुलिस-व्यवस्था कर दी जाए जिस प्रकार की शहरों में है, यदि इतने बड़े खर्च के लिए साधन जुटा भी लिए जाते हैं तो भी गांव के लोग अपने बीच पुलिस के सिपाही को पसंद नहीं करेंगे।

सिपाही भी वैसे वातावरण में अच्छी प्रकार काम नहीं कर सकता। 1860 के प्रथम पुलिस आयोग और 1902-1903 के दूसरे पुलिस आयोग ने इस पारंपरिक व्यवस्था को बनाये रखे जाने की सिफारिश की थी, क्योंकि ऐसी व्यवस्था में स्थानीय जानकारी व स्थानीय रीति-रिवाजों की पुलिस को जानकारी होती है। परंतु इस आयोग का विचार था कि पुलिस को प्रशासनिक

और अन्य कार्रवाई से मजबूत किया जाना चाहिए। इन उच्चाधिकार प्राप्त समितियों आदि की सिफारिशों की अनदेखी नहीं की जा सकती। कोई भी संगठन जिसे गांव में पुलिस का कार्य सौंपा जाता है केवल तभी प्रभावशाली ढंग से काम कर सकता है कि जब उसकी जड़ें गांवों में हों और उसे ग्रामीणों का स्नेह व सहयोग मिलता रहे।

अधिकतर राज्यों में ग्रामीण पुलिस स्टेशनों में बहुत कम सिपाहियों की नफरी होती है। बिहार और आंध्र प्रदेश के ग्रामीण इलाकों में रक्षक वर्ग की नफरी क्रमशः 10 और 11 है। घोरों पुलिस स्टेशन बिहार 302 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के लिए और 68 गांवों की 79000 आबादी के लिए एक ही पुलिस स्टेशन है। और चाकल पुलिस स्टेशन (आंध्रप्रदेश) 389 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के लिए और गांवों की 75000 आबादी के लिए वह अकेला पुलिस स्टेशन है। इसी प्रकर उ.प्र. के दौरान पुलिस स्टेशन में 25 सिपाही हैं और 450 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले हुए 59 गांव की 90000 आबादी के लिए ही पुलिस स्टेशन है। गांवों की शिकायत है कि वे पुलिस को कभी-कभी देख पाते हैं और वह भी तब जब कोई विशिष्ट व्यक्ति गांव में आता है या कोई गंभीर अपराध होता है। पुलिस के सिपाही का भी कहना है कि वह सारे गांव को दौरा नहीं कर सकता।

अपनी सुरक्षा आप—ग्राम सुरक्षा

प्राचीन समय से स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। कम-से-कम ग्राम्य जीवन में बहुत कम परिवर्तन आया है। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि जन-जीवन की सुरक्षा का पूरा दायित्व हमारी पुलिस के ऊपर है। परंतु ग्रामवासियों के सहयोग के बिना केवल पुलिस कुछ नहीं कर सकती। कुछ समय पूर्व मैंने एक चलचित्र देखा था। उसका नाम था "मेरा गांव मेरा देश"। संक्षेप में इसकी कहानी इस प्रकार है कि डाकुओं का एक गिरोह लगातार डकैतियां डाल रहा था और अपने विरुद्ध खड़े होनेवाले गवाहों को जान से मार देता था। अंत में नायक ग्रामवासियों को अपनी अकर्मण्यता पर बुरा-भला कहता है तथा उनके भीतर सोते हुए शौर्य को जगाता है। स्वयं आगे आकर ग्राम सुरक्षा समिति का गठन करता है। एक मुठभेड़ में ग्रामवासियों की सहायता से डाकुओं और उसके बहुत-से साथियों को मार भगाता है। डाकुओं के सरदार को तो अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है।

इस चलचित्र को बहुत-से नगरवासियों और ग्रामवासियों ने देखा होगा परंतु इससे लाभ कितनों ने उठाया। यह कल्पना का विषय है। हो सकता है इस चलचित्र को देखकर बहुत से नवयुवकों में डाकू बनने की प्रवृत्ति ही बलवती हो और यह भी संभव है कि कुछ के मन में नायक की तरह डाकुओं से संगठित होकर लोहा लेने की भी उत्कंठा जाग्रत हुई हो परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि चलचित्र में दर्शायी गयी व्यवस्था तथा साधनों से कुछ सीमा तक प्रत्येक गांव अपनी सुरक्षा का प्रबंध कर सकता है।

प्रत्येक गांव व मोहल्ले में इस सुरक्षा समिति का होना आवश्यक है तभी हम अपने आपको सुरक्षित मान सकते हैं। कहावत भी प्रसिद्ध है "भगवान उन्हीं की सहायता करता है जो स्वयं अपनी सहायता आप करते हैं"। यदि सुरक्षा का पूरा उत्तरदायित्व पुलिस के ऊपर ही छोड़ दिया जाता है तो वह उसी प्रकार होगा जिस प्रकार किसी बीमारी को दूर करने के लिए डाक्टर कोई दवा लिखे और उसकी केवल एक बूंद बहुत सारे पानी में मिलाकर रोगी को दे दी जाए।

स्पष्ट है कि जब तक पर्याप्त मात्रा में दवा रोगी के पेट में अंदर नहीं जाएगी तब तक बीमारी दूर नहीं हो सकती है। वर्तमान आरक्षी जन बल प्रदेश की जनसंख्या के अनुपात में बहुत सारे पानी में दवाई की एक बूंद के समान ही है और इसलिए पुलिस बेकार साबित हो रही है। अपराध का रोग दिन दुगुना रात चौगुना बढ़ रहा है और इसका केवल एक ही निदान है कि ग्राम्य जीवन का

स्तर ऊंचा उठाया जाए और गांवों में बिजली का प्रबंध किया जाए। जिला मुख्यालय से मिलने वाली सड़क बनाई जाए। ग्रामवासियों को बैंकों में रुपया तथा जेवर रखने के लाभ बताए जाएं और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ग्राम सुरक्षा समितियों का अधिक-से-अधिक गठन किया जाए। यदि मैं यह भी कहूं कि ग्राम्य जीवन के सब रोगों की दवा ग्राम सुरक्षा समिति ही है तो भी इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी।

ग्राम सुरक्षा समिति :

पुलिस तो नागरिकों की रक्षा के लिए होती है। पर वह हर जगह और हर समय उपस्थित नहीं रह सकती। अपराधियों से निपटने के लिए गांवों में ग्राम समितियों का गठन अत्यंत आवश्यक है। अपराध को रोकने व अपराधियों को पकड़ने में नागरिकों का सहयोग आवश्यक हो जाता है। यह सहयोग ग्रामीण अंचलों में सुरक्षा समितियों द्वारा संपादित किया जा सकता है।

बदलती हुई परिस्थितियों के अंतर्गत शांति और व्यवस्था को बनाए रखने में ग्राम-सुरक्षा समितियों की उपयोगिता निर्विवाद है। ग्राम-सुरक्षा समिति योजना कोई नई योजना नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात् से यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि प्रत्येक नागरिक शांति-व्यवस्था एवं सुरक्षा के लिए अपना सहयोग प्रदान करे तथा अपना उत्तरदायित्व समझे। यह निर्विवाद है कि बिना जनसहयोग के शांति-व्यवस्था बनाये रखने का कार्य सुचारु रूप से संपन्न नहीं किया जा सकता। ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या और भी कठिन होती जाती है। इसका निदान तभी संभव है जब हर व्यक्ति अपने पड़ोसियों की रक्षा के लिए तत्पर हो जाए।

मान-सम्मान व मर्यादा के आक्रोश में हमने गांव-गांव को छलनी कर दिया है। घर-घर को महाभारत बना दिया है। ऐसे समय में मोहल्ला व ग्राम-सुरक्षा समिति आपसी झगड़े व छोटे-मोटे मामले सुलझाने में सहायक हो सकती है।

अभी हाल ही मैं, 5 अगस्त, 2015 को जम्मू क्षेत्र की ग्रामीण सुरक्षा कमेटी के सदस्यों ने पाक उग्रवादी उस्मान नावेद को जिंदा पकड़कर एक अत्यंत सराहनीय एवं अनुकरणीय कार्य किया है।

आय से अधिक संपत्ति अर्जित करने से संबंधित विधान एवं अनुसंधान

कैलाश नाथ गुप्त
डी1ए/115, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058

सफेदपोश अपराधों की श्रेणी में एक महत्वपूर्ण अपराध है अपनी आय के स्रोत से अधिक धनोपार्जन व संपत्ति अर्जित करना। लोककर्मचारी द्वारा अपनी आय के स्रोत से अधिक धनोपार्जन करना व्यक्ति के किसी एक कार्य के फलस्वरूप नहीं होता वरन् यह उसके द्वारा लगातार एवं आदतन घूस लेने अथवा उसके द्वारा आदतन लगातार ऐसे आपराधिक कार्य किए जाने के फलस्वरूप होता है जो कि धारा 5 (1) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (एक्ट) 1947 के अंतर्गत दंडनीय है।

किसी भी आपराधिक कदाचार को साबित करने का एक मुख्य नियम यह है कि उससे संबंधित प्रमुख घूस लेने अथवा घूस लेने के प्रयास करने से संबंधित कार्यों की प्रत्यक्ष गवाही साक्ष्य के रूप में पेश की जाए। परंतु जहां तक भ्रष्टाचार-निवारण एक्ट का संबंध है, विधान में उपर्युक्त नियम के अतिरिक्त एक विशेष नियम भी साक्ष्य के लिए निहित है, जिससे कि आपराधिक कदाचार साबित किया जा सके और यह उन स्थानों में खासकर जरूरी है जहां घूस मांगने अथवा लेने का प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं हो सकता। यह विशेष नियम भ्रष्टाचार निरोधक एक्ट की धारा 5 (3) के अंतर्गत निहित है, जिससे न्यायालय कुछ परिस्थितियों में अपराध प्रकल्पित कर लेता है। यह नियम न्याय के मुख्य नियम के बिल्कुल विपरीत है, जिसके अंतर्गत यह माना जाता है कि अपराध को साबित करना अभियोजन की जिम्मेदारी है (सी.एस.डी. स्वामी बनाम राज्य-ए.आई.आर. 1960 सुप्रीम कोर्ट, पेज 7)।

भ्रष्टाचार निरोधक एक्ट 1847 (1947 का 2) की धारा 5 उपधारा (1) के अंतर्गत यह निर्धारित किया गया है कि लोककर्मचारियों के किन कार्यकलापों को आपराधिक कदाचार की संज्ञा दी जा सकती है। भ्रष्टाचार निवारक (संशोधन) कानून, 1964 के पूर्व आपराधिक कदाचार के केवल चार वर्ग ही निर्धारित थे। परंतु इस संशोधन के द्वारा एक और वर्ग का इसमें समावेश किया गया है जो धारा 5 की उपधारा (1) (ङ) में निहित है। इसके द्वारा पूर्व प्रतिष्ठित धारा 5 की उपधारा (3) को हटा दिया गया है। वास्तव में यह उपधारा (ङ) पूर्व प्रतिष्ठित उपधारा (3) का सारांश स्वरूप है। परंतु अब इसे अलग से दंडनीय अपराध घोषित कर दिया गया है।

क्या भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) (ङ) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 20(3) के प्रतिकूल है—यह महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न कुछ समय पूर्व ही दिल्ली उच्च न्यायालय ने आपराधिक 'रिट याचिका' नं. 60, वर्ष 1978 के अंतर्गत निर्धारित किया। यह रिट श्री जगदीशचंद्र वर्मा ने दायर की थी। इस उपधारा की विधि मान्यता दिल्ली उच्च न्यायालय के एक डिवीजन बेंच द्वारा इसके अंतर्गत दिए गए निर्णय में 23 मई, 1979 को हुई। दिल्ली उच्च न्यायालय के इस निर्णय की पुष्टि उच्चतम न्यायालय ने भी 28 जुलाई, 1980 को कर दी जबकि उन्होंने स्पेशल लीम (क्रिमिनल नं. 127/80), जिसे श्री जे.सी. वर्मा ने दिल्ली उच्च न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय के विरुद्ध दायर किया था और जिसे उच्चतम न्यायालय ने अस्वीकार करते हुए अपना निर्णय दिया था।

केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के एक केस में अभियुक्त जगदीशचंद्र वर्मा ने दिल्ली उच्च न्यायालय में आपराधिक रिट नं. 60, वर्ष 1978 के अंतर्गत भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम 1947 की धारा 5 (1) (ङ) की

मान्यता को स्वीकार कर लिया गया था। इस केस का अनुसंधान मैंने उस समय के केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के उपाधीक्षक के रूप में किया था।

कृषि एवं स्वास्थ्य मंत्रालय नई दिल्ली के भूतपूर्व डिप्टी कमिश्नर श्री जे. सी. वर्मा ने उपर्युक्त आपराधिक रिट याचिका को केंद्रीय जांच ब्यूरो कृषि मंत्रालय एवं कार्मिक विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली के अधिकारियों के विरुद्ध दायर की थी। उन्होंने यह याचिका संविधान के अनुच्छेद 226 एवं 227 के अंतर्गत तथा धारा 482 एवं 483 सी.आर.पी.सी. के अंतर्गत दायर की थी और निम्नलिखित प्रार्थना की थी—

1. भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम 1947 की धारा 5(1) की उपधारा (ङ) को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 20(3) को ध्यान में रखते हुए गैर कानूनी घोषित किया जाय एवं उसे रद्द कर दिया जाए।

2. सी.बी.आई. के केस नंबर आर.सी. 6/75 को गैर कानूनी घोषित किया जाय एवं इसके अंतर्गत स्पेशल जज दिल्ली न्यायालय के अंतर्गत चल रहे कोर्ट केस नं. 9/1978 को खारिज कर दिया जाए।

श्री जे.सी. वर्मा सरकारी कर्मचारी थे। उन्होंने अपना जीवन एक क्लर्क की हैसियत से 1940 में शुरू किया था। कुछ समय बाद पुनर्वास मंत्रालय में अनेक पदों पर कार्यरत रहने के पश्चात वे कृषि मंत्रालय में डिप्टी कमिश्नर के रूप में आए। उनके विरुद्ध केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो में मालूम स्रोतों से अधिक आय अर्जित करने के इल्जाम में भ्रष्टाचार निरोधक एक्ट की धारा 5(1) (ङ) में केस दर्ज किया गया। अनुसंधान पूरा कर लेने के पश्चात् मैंने 21 जुलाई, 1977 को स्पेशल जज न्यायालय दिल्ली में इस अभियुक्त के खिलाफ अभियोग-पत्र दाखिल कर दिया। इसमें यह तथ्य पेश किया गया कि अनुसंधान के फलस्वरूप यह पाया गया कि अभियुक्त के पास मालूम स्रोतों से अधिक 4,86,060.30 रुपये अधिक अर्जित करने का साफ-साफ मामला बनता है जिसका कि उसके पास कोई संतोषजनक उत्तर नहीं है।

यह केस जिला न्यायालय दिल्ली में विचाराधीन था और अभियोग लगाए जाने की अवस्था में था। इसी शुरुआती अवधि में मुल्जिम ने उपर्युक्त रिट याचिका दिल्ली उच्च न्यायालय में दाखिल करके भ्रष्टाचार निरोधक एक्ट 1947 की धारा 5(1)(ङ) की संवैधानिकता को चुनौती दी थी।

इस धारा के अनुसार अगर कोई लोकसेवक या उसकी ओर से अन्य किसी के कब्जे में ऐसे धन-संबंधी साधन या ऐसी संपत्ति है, जो उसकी आय के ज्ञात स्रोतों की आनुपातिक है अथवा उसके पद की कालावधि के दौरान किसी समय कब्जे में रही है, जिसका कि वह लोकसेवक समाधानप्रद लेखा-जोखा नहीं दे सकता, (बताने में असमर्थ होता है), तो ऐसी संपत्ति आय के स्रोतों से अधिक मानी जाएगी एवं यह एक अलग से दंडनीय अपराध माना जाएगा। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1947 में संशोधन करके एक्ट 40 वर्ष 1964 की यह धारा 5 (1) (ङ) अलग से इसमें जोड़ी गई थी एवं इसको स्वयं में एक दंडनीय अपराध करार दिया गया था।

अपनी क्रिमिनल रिट याचिका में अभियुक्त ने यह भी तर्क दिया था कि 5(1) (ड) धारा के अंतर्गत जुर्म बनने के पूर्व अपराधी को ऐसा मौका दिया जाना आवश्यक है जबकि वह अपनी आय का लेखा-जोखा एवं संपत्ति का हिसाब-किताब संतोषजनक रूप से पेश कर सके और जब वह इस काम में असफल होता है तभी यह माना जाता है कि अपराधी ने इस धारा के अंतर्गत जुर्म किया है। इस प्रकार दूसरे शब्दों में उस व्यक्ति पर यह जोर-जबरदस्ती की जाती है कि वह अपने ही खिलाफ एक गवाह के रूप में पेश हो और यह संविधान के अनुच्छेद 20 के अंतर्गत अवांछनीय है।

संविधान के अनुच्छेद 20 धारा (3) के मुताबिक किसी भी व्यक्ति को, जो कि अपराधी है, उसे अपने ही खिलाफ एक गवाह बनने के लिए दबाव नहीं डाला जा सकता।

वादी ने इस बात पर काफी बहस की कि यह अन्वेषणकर्त्ता की जिम्मेवारी है कि वह अभियुक्त को आय के स्रोतों एवं संपत्ति का विवरण देने के लिए आमंत्रित करे और जब अभियुक्त यह न कर पाये तभी वह कोर्ट में आरोप-पत्र पेश करे। इस प्रकार अभियुक्त को जबरदस्ती उसके ही खिलाफ एक गवाह के रूप में खड़ा किया जाता है। इसके पूर्व जबकि इसे 5(1) (ङ) के अंतर्गत स्वयं में एक दंडनीय अपराध घोषित किया गया। धारा 5(3) के अंतर्गत यह अलग से अपराध नहीं था—वरन् इसे केवल साक्ष्य के रूप में पेश किया जा सकता था, जिससे अपराधी के आपराधिक कदाचार जैसा कि धारा 5(1) में निर्धारित है और जिसके लिए कोर्ट में उसके विरुद्ध मामला चल रहा है, उसे साबित किया जा सके (सज्जन सिंह बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 1964 उच्चतम न्यायालय पृष्ठ 464)। जिस समय उपधारा (3) की शर्तें पूरी हो जाती थीं, न्यायालय को यह अनिवार्य रूप से मान लेना होता था कि अभियुक्त के विरुद्ध आपराधिक कदाचार साबित हो जाता है जैसा कि धारा 5(1) (घ) में निहित है अर्थात् अपराधी ने गैर कानूनी ढंग से अपनी स्थिति व सरकारी कर्मचारी के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करते हुए मूल्यवान वस्तुएं लीं अथवा अन्य फायदे उठाए। (सी.एस.डी. स्वामी बनाम राज्य—ए.आई.आर.1960 एस.सी. 7)।

न्यायालय में कोर्ट केस के दौरान अभियोजन पक्ष को यह पूरा अधिकार था कि न केवल वह अपने पेश किए हुए गवाहों के साक्ष्य से किसी व्यक्ति का अपराध साबित करे, बल्कि अगर वह व्यक्ति स्वयं संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाता है तो इस बात को भी महत्ता प्रदान की जा सकती थी (कैप्टन जे.आर. ब्लीचे बनाम राजा ए.आई.आर. 1959 कलकत्ता 641)।

धारा 5(1) की उपधारा 507 को जोड़ने का नतीजा यह हुआ कि केवल जाने हुए स्रोतों से अधिक संपत्ति जबकि वह इसका संतोषजनक उत्तर देने में असमर्थ है, यह स्वयं में एक अपराध घोषित हो गया। यह जानने योग्य बात है कि 18 दिसंबर, 1964 के पूर्व यह स्थिति नहीं थी, यद्यपि उस समय उपधारा (3) के अंतर्गत केवल एक अवधारणा ही बनाई जाती थी। उस समय यह केवल अपराध साबित करने का यह एक जरिया था और यह धारा 5(2) के अंतर्गत धारा 5(1) (क)(ख)(ग) और (घ) में अंतर्निहित था और उन्हीं अपराधों को साबित करने में मदद कर सकता था (महाराष्ट्र राज्य बनाम के.के.एस. रामास्वामी—ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 2091)।

अपराध निरोधक अधिनियम की धारा 5(1) (ङ) एवं साथ में 5(1)(2) का अपराध सिद्ध पाया जाने के लिए यह आवश्यक है कि अभियुक्त के पास जाने हुए ज्ञात स्रोतों से अधिक संपत्ति अर्जित पायी जाए, जिसके लिए उसके पास संतोषजनक उत्तर न हो। यह आरोप साबित करने के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं—

1. यह सिद्ध करना आवश्यक है कि अपराधी एक सरकारी कर्मचारी है।

2. उस संपत्ति का विवरण एवं स्वरूप जो उसके कब्जे में पाई गई।

3. यह साबित करना आवश्यक है कि उसके ज्ञात स्रोत, जो कि अभियोजन को मालूम है, वे क्या हैं।

4. यह सिद्ध करना अति आवश्यक है कि जो संपत्ति पाई गई वह अभियुक्त के ज्ञात स्रोतों से कहीं अधिक है।

एक बार जब यह चारों बातें साबित हो जाती हैं तो अपराधी के विरुद्ध धारा 5(1)(ङ) के अंतर्गत मामला साबित हुआ समझा जा सकता है जब तक कि अपराधी स्वयं इसका संतोषजनक विवरण प्रदान न कर दे। ये चारों बातें साबित होते ही इस बात की जिम्मेदारी अपराधी के ऊपर चली जाती है कि वह यह साबित करे कि जो संपत्ति पाई गई है वह उसके जाने हुए स्रोतों से अधिक नहीं है। इस प्रकार अपराधी के ऊपर उत्तरदायित्व हस्तांतरित हो जाता है। फिलहाल अपराधी

के स्वयं निर्दोष साबित करने के लिए सारी शंकाओं की परिधि से आगे गवाही साबित नहीं करनी है, वरन् उसको तो केवल ऐसी बातें साबित करनी हैं जिससे यह विश्वास किया जा सके कि यह भी संभावना हो सकती है (महाराष्ट्र राज्य बनाम वसुदेव रामचंद्र कैवालवर— ए.आई.आर. 1981 एस.सी. 1186)।

यहां यह बात जानने योग्य है कि आय ये अधिक पाई जानेवाली संपत्ति के इन मामलों में यह अति आवश्यक है कि अपराधी से उसके आय व खर्चे एवं संपत्ति के विषय में विस्तृत सवाल जवाब किए जाएं। सरकारी कर्मचारी को शक का पूरा फायदा मिलने का अधिकार है, जहां वह इन विषयों में कोई दावा करता है, चाहे वह आय से संबंधित हो अथवा खर्चे से इसका फायदा उसे दिया ही जाना चाहिए, जब तक कि अन्वेषण के दौरान उसके दावे को गलत साबित न कर दिया जाए।

सरकारी कर्मचारी के इन दावों को सिर्फ सरसरी तौर से रद्द नहीं कर देना चाहिए और अन्वेषणकर्त्ता को ऐसा पूरा मौका देना चाहिए, जिससे कि अपराधी यह महसूस करे कि अन्वेषणकर्त्ता उसे ऐसा पूरा मौका देने के लिए इच्छुक है, जिसमें कि वह अपने ऊपर लगाये गए इल्जामों का पूरा-पूरा उत्तर दे सके और अपने को निरपराध घोषित कर सके।

उपर्युक्त रिट याचिका खारिज करते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीश श्री बी.डी. मिश्रा एवं माननीय न्यायधीश श्री एफ.एस. गिल ने कुछ इस प्रकार निर्णय दिया :

"हमें भय है कि प्रार्थी के प्रख्यात वकील के साथ हम सहमत नहीं हो सकते। यह धारणा अर्थात् कल्पना करना भूल है कि एक अभियुक्त द्वारा अन्वेषण अधिकारी को अपनी संपदा का समाधानप्रद लेखा-जोखा देना अनिवार्य है। खंड (ङ) के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि अभियुक्त को यह अधिकार है कि वह अपनी संपदा का समाधानप्रद लेखा-जोखा दे या न दे। किसी भी प्रकार की कल्पना से यह नहीं कहा जा सकता कि यह खंड दबाव डालता है कि अभियुक्त, अनुच्छेद 20 (3) की शर्तों के अनुसार अपने आप के विरुद्ध साक्षी होगा। यदि अभियुक्त द्वारा कोई स्पष्टीकरण दिया गया है तो वह न तो उसे अपराधी घोषित करेगा और न ही अन्वेषण अधिकारी द्वारा उनके विरुद्ध इस्तेमाल किया जाएगा।"

धारा 5 (1)(ङ) में यह प्रावधान है कि अभियुक्त व्यक्ति के कब्जे में जो भी धन-संबंधी साधन या ऐसी संपत्ति है जो उसकी आय के ज्ञात स्रोतों के अनुपात से अधिक है वह उसका समाधानप्रद लेखा-जोखा दे। साधारणतया एक अभियुक्त व्यक्ति हाल ही में चुराई गई अधिकृत संपत्ति को वर्णात्मक रूप से ईमानदारी से सिद्ध करता है तो वह दोषमुक्त होने का हकदार होगा। (उदाहरण (क) भारतीय साक्ष्य नियम की धारा 114)।

यदि न्यायालय को किसी अपराध के संबंध में किसी आवश्यक बात के बारे में संदेह होता है तो इस संदेह का लाभ अभियुक्त को मिलना चाहिए। लेकिन विधायिका ने उचित रूप में 'समाधानप्रद लेखा-जोखा' (संतोषपूर्वक वर्णन) शब्द का उपयोग किया है। समानप्रद (संतोषपूर्वक) शब्द को महत्व देना ही चाहिए और विधायिका ने अभियुक्त पर यह भार डाला है कि वह ठीक-ठीक और सत्यता से यह स्पष्टीकरण दे कि उसने इतना अधिक धन कैसे अर्जित किया और साथ ही न्यायालय को भी संतुष्ट करे कि उसका स्पष्टीकरण स्वीकार करने योग्य है (सी.एस.डी. स्वामी बनाम राज्य ए.आई.आर. 1960 एस. सी.-7)।

इसमें कोई संदेह नहीं कि यह केवल धन, साधन या ऐसी संपत्ति से संबंधित है जो उसकी आय के ज्ञात स्रोतों के अनुपात से अधिक है जो दंडनीय है परंतु अंतिम समाधानप्रद लेखा-जोखा न्यायालय को ही देय है। नियोजक ने लेखे-जोखे के संबंध में सरकारी कर्मचारी से पूछा है या नहीं या पूछना समझा, केवल ऐसे किसी आधार पर न्यायालय को यह विचार करने से नहीं रोका जा सकता कि अभियुक्त द्वारा धारा 5(1)(ङ) के अधीन

अपराध किया गया है या नहीं। विधि के अनुसार स्थापित न्यायालय को इकट्ठे अन्वेषण के दौरान की गई सामग्री के संबंध में विचार करने से वंचित नहीं किया जा सकता। न्यायालय के सामने सामग्री प्रस्तुत कर देने के पश्चात यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि जिस संपत्ति का लेखा दिया गया है, क्या उसे विधिपूर्वक प्राप्त किया गया है या नहीं। इस प्रकार अभियुक्त को अपनी संपत्ति का लेखा-जोखा न्यायालय को प्रस्तुत करना होगा।

अभियुक्त को अपने पास किसी ऐसी संपत्ति के बारे में अन्वेषण एजेंसी को विश्वस्त कराने के संबंध में अपना सहयोग देने या न देने से इंकार करना पूर्णरूपेण अधिकार है, जो उसकी आय के ज्ञात स्रोतों के अंतर्गत से अधिक है, लेकिन पूर्ण जोखिम उसका स्वयं का ही होगा। (1979 सी.आर.एल.जे. 384 (पटना) संतोषकुमार बनाम बिहार राज्य)।

श्रीमती नंदनी सतपथी बनाम पी.एल. दानी और अन्य, ए.आई.आर. 1978 एस. सी. 1025 में यह फैसला किया गया था कि दंड संहित प्रक्रिया नियम 16(1) और संविधान अनुच्छेद 20(3) के प्रावधान मूलरूप में एक ही क्षेत्र से संबंधित हैं जहां तक कि पुलिस अन्वेषणों का संबंध है। न्यायालय की ओर से बोलते हुए कृष्णा अय्यर जे. ने दंड संहिता प्रक्रिया के नियम 161 के संदर्भ में इस प्रकार निर्णय दिया "प्रश्न के उत्तर देने में मनाही या उनके सत्यपूर्वक उत्तर न देने की परिस्थिति में की गई कानूनी कार्रवाई को अनुच्छेद 20(3) के अर्थों में बाध्यता नहीं कहा जा सकता।"

दूसरे शब्दों में यदि अन्वेषण अधिकारी, जब अभियुक्त से प्रश्न करते समय उस पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डालता, तब यदि कोई उत्तर दिया जाता है तो उसे दबाव में ली गई गवाही नहीं कहा जा सकता।

संविधान के अनुच्छेद 20 के खंड (3) की व्याख्या सर्वोच्च न्यायालय के 11 न्यायाधीशों के बैंच द्वारा की गई थी (कालू ओंछाद, ए.आई.आर. 1961 एस.सी. 1808)। इसमें यह फैसला किया गया कि पुलिस अधिकारी द्वारा अभियुक्त से केवल मात्र प्रश्न पूछने से जिसके फलस्वरूप अभियुक्त स्वेच्छा से बयान दे और जो बाद में उसके विरुद्ध प्रयोग की जाने के स्वरूप में बदल जाए तो उसे बाध्यता से लिया गया बयान नहीं कहा जा सकता। यह भी कहा गया कि अनुच्छेद 20(3) के निषेध के अंदर लाने के लिए यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति जब यह ध्यान दे रहा है तो वह अभियुक्त व्यक्ति की भांति रहा हो और वह काफी नहीं था कि बयान (स्टेटमेंट) देने के बाद किसी भी समय वह अभियुक्त बन जाए। इस प्रकार यह नियम है कि अभियुक्त द्वारा, जब वह हिरासत में हो, अपनी स्वेच्छा से बयान दिया जाए और साक्ष्य अधिनियम के नियम 27 की मान्यता में हो, तो वह अनुच्छेद 20 के खंड (3) के प्रावधानों द्वारा अवैध नहीं माना जाएगा, क्योंकि कोई भी बाध्यता इस्तेमाल नहीं की गई। अनुच्छेद 20(3) के इस्तेमाल में 'साक्ष्य' को एक साधारण व्याकरणिक अर्थ में न्यायालय में मौखिक साक्ष्य देना माना जाता है। कानूनी केस-व्याख्या (केस ला) इस साहित्यिक व्याख्या से एकदम आगे बढ़ गया है। अब इसका अधिक उदार अर्थ है, अर्थात न्यायालय में साक्ष्यपूर्ण दी गई गवाही या अभियुक्त द्वारा न्यायालय के बाहर भी मौखिक या लिखित में दिया गया बयान।

तुकाराम जी गावकर बनाम आर.एन. शुक्ला और अन्य ए.आइ.आर. 1968 एस.सी. 1050 आवेदक के इस तर्क को कि उसे अपना बचाव पक्ष पेश करने के लिये साक्ष्य बाक्स में पेश होना उनके लिए आवश्यक था और अनुच्छेद 20 (3) की धारा के आधार पर इस प्रकार अपने आप के विरुद्ध साक्षी होने के लिए उस पर दबाव डाला जा रहा था व भ्रामक बताया गया था। साथ ही यह कहा गया 'यहां तक कि एक आपराधिक जांच में भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 342-ए अंतर्गत अपराध का सामना करता कोई भी अभियुक्त व्यक्ति अपने बचाव के लिए एक सक्षम साक्षी है और अपने विरुद्ध लगाए गए अपराध को अप्रमाणित जताने के लिए शपथ के साथ साक्ष्य दे

सकता है। अभियुक्त व्यक्ति के लिए अत्यंत आवश्यक होगा कि वह अपने बचाव में वास्तविकता जताने के लिए साक्ष्य बाक्स में आए। लेकिन यह कहने के लिए कोई कारण नहीं है कि इस प्रकार वह अपने आप के विरुद्ध एक साक्षी हो जाता है, और अनुच्छेद 20(3) का उल्लंघन होता है। अनुच्छेद 20(3) के प्रसंग में बाध्यता एक अन्य व्यक्ति या अधिकारी से होनी चाहिए।'

दिल्ली उच्च न्यायालय ने उपर्युक्त याचिका में आगे निम्न व्याख्या की :

"इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि किसी अपराध के संबंध में अभियुक्त स्वेच्छा से बयान देता है जो अभियोजित है या परिस्थितिवश दबाव में आकर बयान देता है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपने आप के विरुद्ध के साक्षी होने के लिए विवश किया जा रहा है। इस प्रकार भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) का खंड (ङ) अभियुक्त को अपने-आप के विरुद्ध साक्षी होने के लिए विवश नहीं करता। इस प्रकार संविधान का अनुच्छेद 20(3) का उल्लंघन नहीं होता।"

हम इस विचार से सहमत नहीं हो सकते कि अभियुक्त द्वारा अन्वेषण अधिकारी को अपनी संपत्ति के बारे में संतुष्ट करना पड़ता है कि वह अनुपात से अधिक नहीं हो रही है। यह याद रखना चाहिए कि यह न्यायालय है जिसके प्रति अभियुक्त उत्तरदायी है, जहां उसे पूरा लेखा-जोखा देना है। न्यायालय के सम्मुख प्रश्न यह हैं (1) क्या संपत्ति उसकी आय के ज्ञात स्रोतों के अनुपात से अधिक है और (2) क्या उसके लिए संतोषपूर्वक लेखा-जोखा खोल दिया गया है? अभियुक्त, पुलिस को अपनी संपत्ति का लेखा-जोखा देने के लिए स्वतंत्र है या लेखा-जोखा देने से इंकार भी कर सकता है। पुलिस को लेखा-जोखा देने से इंकार करने से यही पता चलता है कि उसके पास कोई स्पष्टीकरण नहीं है और अपनी संपत्ति के लिए लेखा-जोखा देने में असफल है।

अभियुक्त द्वारा पेश की गई एस.एस.पी. (आपराधिक) नं. 127 को अस्वीकार करते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय के इस निर्णय को भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भी सही माना एवं उस निर्णय को बहाल रखा।

'हिम्मत ऐप' देगा हिम्मत

वीणा पाठक

द्वारा पुस्तक सदन प्रकाशन
नजूल शॉप नं.-4 सरोजिनी नायडू मार्ग
सिविल लाइंस
इलाहाबाद-211001 (उ.प्र.)

किसी भी सभ्य समाज की एक बड़ी पहचान यह है कि उसमें महिलाएं बाकी नागरिकों की तरह ही स्वयं को सुरक्षित महसूस करें। भारत वर्तमान में महिलाओं के लिए एक असुरक्षित देश की तरफ अग्रसर हो रहा है। घरेलू हिंसा और यौन हिंसा काफी तेजी से बढ़ रही है। आपराधिक मनोवृत्ति के लोगों के अलावा अच्छे सुशिक्षित व नामी-गिरामी लोग भी महिलाओं के प्रति हिंसा में लिप्त होते पाये जा रहे हैं। विज्ञान, शिक्षा, उद्योग, अंतरिक्ष आदि क्षेत्रों में तेजी से आगे बढ़ रहा भारत स्त्री के प्रति तेजी से असंवेदनशील होता जा रहा है। पश्चिम की आंधी भारतीयता व उसकी संस्कृति को तेजी से परिवर्तित कर अपने आगोश में लपेट रही है। भारत में नारी को सेक्स आब्जेक्ट के रूप में देखा जाने लगा है।

दिल्ली के निर्भया कांड के बाद से तो महिलाओं के प्रति अपराधों में बाढ़-सी आ गयी है। वर्ष 2014 में देश की राजधानी दिल्ली में बलात्कार व छेड़छाड़ के 6500 मामले दर्ज हुए। यदि सत्यता की छानबीन की जाए तो इसमें लगभग दो गुने मामले मिल जाएंगे जिन्हें पुलिस ने महिला को लोकलाज, मान-मर्यादा व कानूनी पचड़े की बात समझकर दर्ज ही नहीं किया होगा। एक चर्चित लेखिका 'सूसन ब्राउन मिल' ने अपनी पुस्तक 'अंगेस्ट अवर बिल' में लिखा है कि सामान्यतः पांच में से एक केस ही दर्ज होता है। सर्वेक्षणों में इस प्रकार की बातें उभरकर आ रही है कि पचास प्रतिशत युवाओं का मानना है कि यदि कानून का भय न हो तो वे रेप कर सकते हैं। यदि भारतीय दंड संहिता की रेप की परिभाषा के अनुसार इन सर्वों का परीक्षण किया जाए तो रेप करने की बात कहने वाले इन युवाओं का प्रतिशत बढ़कर लगभग 70 प्रतिशत तक पहुंच जाएगा। स्पष्ट है कि महिलाएं वर्तमान में पूरी तरह से असुरक्षा के दौर से गुजर रही हैं।

जब भी महिलाओं के साथ घटी यौन हिंसा की कोई घटना राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर सुर्खियों में आती है तो हमारे राजनीतिज्ञ व पुलिस अधिकारी घूम-फिरकर महिलाओं को ही दोषी ठहराने लगते हैं, जबकि स्थिति इससे ठीक विपरीत है। महिलाएं किधर भी निकल जाएं- हर तरफ शिकारी निगाहें उसे घूरती दिख जाती हैं। वह स्वयं को हर तरफ असुरक्षित ही महसूस करती हैं।

हाल ही में हमारी राष्ट्रीय राजधानी नई दिल्ली में सुरक्षित समझी जानेवाली विदेशी कंपनी 'उबेर' के टैक्सी चालक ने जब एक युवती को टैक्सी में ले जाकर सूनसान इलाके में रेप किया तो पुनः महिलाओं की सुरक्षा का मुद्दा राजधानी नयी दिल्ली में उठने लगा। केंद्र सरकार और दिल्ली पुलिस ने पहल की कि कुछ ऐसा किया जाए कि पीड़ित महिला के एक मैसेज पर पुलिस तत्काल उसकी रक्षा करने को पहुंच जाए। इसके लिए राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली की महिलाओं के लिए, उन्हें ज्यादा सुरक्षा देने व महफूज रखने के लिए दिल्ली पुलिस ने 'हिम्मत ऐप' नाम से एक मोबाइल एप्लीकेशन तैयार किया जिसको हमारे गृह मंत्री जी श्री राजनाथ सिंह ने इस वर्ष महिलाओं के लिए जारी किया है।

इस 'हिम्मत ऐप' के लिए किसी भी महिला के पास एंड्रायड फोन होना जरूरी है। एंड्रायड फोन रखनेवाली दिल्ली निवासी महिलाओं को इस ऐप को प्रयोग करने के लिए इसे सबसे पहले प्ले स्टोर से डाउनलोड करना होगा। इसके पश्चात दिल्ली पुलिस की वेबसाइट पर जाकर इसे रजिस्टर करना होगा। इसमें अपना नाम, मोबाइल नंबर और कम-से-कम दो रिश्तेदार या उन

दोस्तों के नाम और नंबर बताने होंगे, जिन्हें मुसीबत के समय संदेश भेजा जा सके। इस प्रारंभिक प्रक्रिया के बाद दिल्ली पुलिस की ओर से दिए गए नंबर पर डाउनलोड लिंक और रजिस्ट्रेशन की मिलेगी, जिसे महिला रजिस्ट्रेशन विंडो में डालकर ऐप इंस्टाल कर सकती है।

यह ऐप खास तौर से उन कामकाजी महिलाओं के लिए बनाया गया है, जिन्हें रात की शिफ्ट में काम करके वापस लौटना पड़ता है या देर रात अकेले सफर करना पड़ता है। इससे महिलाओं में यह आत्मविश्वास रहेगा कि मुसीबत के वक्त वह अकेली नहीं रहेंगी, उसकी हिफाजत के लिए तुरंत कोई आ जाएगा। महिलाओं की हर तरह से हिफाजत हो, यही इस ऐप का मकसद है।

इस ऐप के काम करने की प्रक्रिया काफी सरल है। मुसीबत के समय महिला तुरंत अपनी सुरक्षा के लिए फोन हिलाकर या पावर बटन दबाकर अलर्ट भेज सकेगी। उसके बटन दबाते ही तीस सेकंड की ऑडियो-वीडियो रिकार्डिंग शुरू हो जाएगी, जो सीधे पुलिस कंट्रोल रूम में पहुंच जाएगी। पुलिस कंट्रोल रूप के अलावा डेटाबेस में स्टोर कम-से-कम 05 नंबरों पर अलर्ट मैसेज जाएगा, जो ऐप से लिंक फेसबुक और ट्विटर अकाउंट्स पर भी दिखाई देगा। इसके बाद का सारा काम पुलिस का है। मैसेज में यूजर और उस समय की डिटेल्स जैसे लोकेशन, समय आदि की सूचना पीसीआर (पुलिस कंट्रोल रूम वैन) और संबंधित थाने को तुरंत कार्रवाई के लिए भेज दी जाएगी और संबंधित स्थानों से पुलिस बल तुरंत उस स्थल के लिए प्रस्थान कर जाएगा।

जाहिर है कि एक बार जब सूचना सही समय पर पहुंच जाएगी तो कार्रवाई में भी देरी नहीं होगी। अपराध के कई मामलों में इसलिए भी पीड़ित का बचाव नहीं हो पाता है, क्योंकि उसकी सूचना सही समय पर नहीं मिल पाती है। सूचना मिलने के बाद अब पुलिस के पास इस प्रकार का कोई बहाना नहीं होगा कि उसे सही समय पर सूचना नहीं मिली। अब उसकी जिम्मेदारी तय की जा सकेगी, क्योंकि सबकुछ इलैक्ट्रॉनिकली रिकॉर्ड रहेगा।

एक समस्या जो इसके उपयोग को लेकर है, वह यह कि सभी महिलाओं के पास एंड्रायड फोन होना संभव नहीं है। इस ओर भी सरकार को ध्यान देना होगा कि एंड्रायड फोन सस्ती दर पर बाजार में लोगों को सुलभ हो सकें ताकि 'हिम्मत ऐप' के अतिरिक्त भी अन्य लाभ महिलाएं इनके माध्यम से प्राप्त कर सकें।

कोई नई तकनीक जब समाज में आती है, तो उसका दुरुपयोग भी संभव होता है। इस 'हिम्मत ऐप' के दुरुपयोग की भी संभावना हो सकती है। पुलिस को परेशान करने के लिए लोग फेक (झूठी) सूचना दे दें। इसको देखते हुए इस 'हिम्मत ऐप' के प्रयोग करने वालों के लिए पुलिस ने यह शर्त भी रखी है कि यदि किसी ने दिल्ली पुलिस को इस ऐप के माध्यम से तीन बार झूठी सूचना दी, तो उसका रजिस्ट्रेशन निरस्त कर दिया जाएगा।

अभी तो दिल्ली में इस प्रकार के ऐप की शुरुआत हुई है, लेकिन इस प्रकार के ऐप देश के सभी महानगरों के लिए बनाए जाने चाहिए ताकि किसी भी प्रांत के किसी भी नगर या महानगर में महिलाओं के साथ उत्पीड़न की घटना होने पर तत्काल पुलिस सहयोग प्राप्त हो सके।

दिल्ली पुलिस की इस अनूठी पहल का महिलाओं ने स्वागत किया है। इस तकनीक के दौर में इस प्रकार का ऐप निश्चत ही उनकी मुसीबतें कम करने में सहायक सिद्ध होगा, ऐसी उम्मीदें महिलाओं को हैं। प्रारंभिक तौर पर इस तकनीक ने उनका मनोबल तो बढ़ाया ही है कि संकट की घड़ी में उनके साथ ऐसा कोई तो है जिसे वे बुला सकती हैं। अब यह तो पुलिस पर निर्भर करता है कि सूचना मिलने पर कितने कम रिस्पांस टाइम में मदद हेतु पहुंचती है। फिलहाल महिलाओं को महफूज रखने तथा उन्हें हिम्मत देने के दिल्ली पुलिस के इस तकनीकी जज्बे को धन्यवाद दिया जाना चाहिए कि उसने अपने में ऐसी सोच तो विकसित की।

आत्महत्या के सामाजिक प्रभाव पर एक शोधपरक दृष्टि

डा. श्रीराम आर्य
प्रधान संपादक, सामाजिक शोध पत्रिका एवं प्राध्यापक
समाजशास्त्र, वि.बी.आर.आई. उदयपुर (राज.)

मनुष्य ईश्वर की श्रेष्ठ कृति है। जब कोई किसी की श्रेष्ठ कृति होता है तो वह उसके लिए क्या नहीं करता? उसके अस्तित्व के लिए जो भी जरूरी है वह सब उसके लिए करता है। एक पिता अपने पुत्र के लिए निर्माण एवं उत्थान में जो भूमिका निभाता है उससे भी आगे जाकर परमपिता ने उसकी श्रेष्ठ कृति के लिए निभाई है। उसकी बनावट से पहले उसकी तमाम जरूरतों का ख्याल रखकर इस धरती पर सृष्टिकाल में तमाम वनस्पतियां, औषधियां, पेय इत्यादि पथ्य एवं भोज्य पदार्थों का प्रबंध किया। औरत एवं मर्द के दो लिंग बनाकर विपरीत आकर्षण पैदा कर राग-अनुराग के सूत्र स्थापित किए।

सृष्टिक्रम जारी रहे इस हेतु भोग विलासिता के साथ संतानोत्पत्ति क्रिया का अनवरत क्रम सुनिश्चित किया। धरती पर समय के साथ समाज बना, नातेदारी बनी, नियम एवं कानून बने और आज जैसी समाज की जटिल व्यवस्था बनी। ऐसा तो नहीं रहा होगा कि प्रारंभिक काल से मनुष्य आज जैसा रहा हो, पर मूल प्रवृत्ति लगभग एक जैसी ही रही होंगी। वे न केवल मनुष्यों जैसी रही होंगी बल्कि जानवरों जैसी भी। कुछ चीजों को छोड़कर जानवरों और मनुष्यों में भेद करना मुश्किल है।

कहते हैं पहला युग स्त्री प्रधान था। इस युग में न शोषक था, न शोषित। केवल विपरीत आकर्षण के चलते काम क्रीड़ा और वासना का तत्व प्रबल था। इस व्यवहार में औरत मर्द पर भारी थी। यह उसकी इच्छा थी कि वह किसके हाथ रहे और किसके साथ नहीं। किससे संबंध बनाए और किससे नहीं। यह उसकी आजादी थी। ऐसा इस धरती पर सदैव ही होता रहा है जो आज आजाद है वह कल रहे, यह जरूरी नहीं। समय के साथ सब कुछ बदलता रहा है। आज जो कुछ है वह समय के साथ बदलाव का परिणाम है। सब कुछ बदलता रहा है। नातेदारी का जो विकसित स्वरूप आज है वह परिष्कृत है, लेकिन यह जरूर है कि संबंधों की संकीर्णता का दायरा आज जैसा नहीं था। विवाह संस्था के साथ ही परिवार का स्वरूप बदलने लगा। संग्रहण की प्रवृत्ति का विकास हुआ। पुरुष प्रधान समाज बना। अब स्त्री की स्वतंत्रता परतंत्रता में बदल गई। संकीर्णताओं का विस्तार हुआ।

किन्हीं स्वार्थों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज में एक-दूसरे को नुकसान पहुंचाना एक मानवीय प्रवृत्ति का हिस्सा रहा है लेकिन यह प्रवृत्ति कभी-कभी हिंसक बन गई तो वह एक-दूसरे को मारने लगा। ये हत्याएं जब ज्यादा होने लगीं तो एक भय और द्वेष का वातावरण बनने लगा। बाहुबली साम्राज्यवाद का फैलाव हुआ। जिसके अवशेष आज भी विकसित समाज के बावजूद देखे जा सकते हैं।

यहां पर यह उल्लेखनीय है कि जब व्यक्ति किसी से भयभीत होता है तो वह उससे अपने को बचाने का प्रयास करता है भले ही इस प्रयास में वह स्वयं को खत्म कर ले। इसके वह अनेक तरीके भी अपनाता है। इसी तरह वह अपने स्वाभिमान को बचाने के लिए भी अपने को मार लेता है। राजस्थान में चित्तौड़गढ़ में पद्मिनी रानी का जौहर इसी का उदाहरण है। संभव है आत्महत्या का प्रथम चरण इन्हीं कारणों से प्रारंभ हुआ होगा।

हरबर्ट स्पेंसर का मानना है कि समाज एक सरल रेखा से आगे बढ़ा है। आज जो जटिल समाज है वह

समय का प्रभाव है। मनुष्य का साम्राज्यवादी दृष्टिकोण लगातार बढ़ता गया। मनुष्य ने पहली सत्ता स्त्री की छीनी। वह इसी को पाने के लिए अनेक लड़ाइयां लड़ता रहा है। इसके बाद उसका कब्जा भूभाग पर होने लगा तथा यह सिलसिला अब तक चलता आ रहा है। पर अब तक के मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के इतिहास के कालखंड़ को देखा जाए तो पाएंगे की मानवीय समाज में स्वार्थों के चलते हत्याएं तो होती रही हैं पर आत्महत्याओं का दौर आज जैसा कभी नहीं रहा है। आज जिस तरह से नौजवानों से लेकर समाज के हर वर्ग में यह प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है वह अति चिंतनीय तो है ही, साथ ही समाज के लिए भी विघटनात्मक प्रवृत्तियां भी विकसित कर रही हैं। अब हम आत्महत्या के अवधारणात्मक पक्ष पर प्रकाश डालते हैं जो इस प्रकार है :—

आत्महत्या की अवधारणात्मक व्याख्या

साधारण शब्दों में जब कोई स्त्री या पुरुष किन्हीं कारणों से स्वयं को मार लेता है तो यह स्वयं द्वारा स्वयं को मारना अथवा 'आत्महत्या' कहलाती है। यहां आत्म का तात्पर्य स्वयं से है तथा हत्या का अर्थ मारना। इस प्रकार से आत्महत्या का अर्थ स्वयं को मारना है। भारत सरकार ने आत्महत्या के निम्न तीन आधार प्रस्तुत किए हैं :—

1. यह अप्राकृतिक मौत हो,
2. मरने का विचार स्वयं की उपज हो एवं
3. आत्महत्या के पीछे कोई विशेषीकृत कारण हो।

आत्महत्या को समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम ने अपनी कृति 'आत्महत्या' में परिभाषित किया है जो निम्नानुसार है :—

"आत्महत्या" शब्द मृत्यु की उन समस्त घटनाओं के लिए प्रयुक्त किया जाता है, जो स्वयं मरने वाले की सकारात्मक अथवा नकारात्मक क्रिया का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष परिणाम होती है, जिसके भावी परिणाम को वह (मरने वाला व्यक्ति) जानता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में लिखा है कि किसी व्यक्ति को उनके प्राण अथवा दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जायेगा, अन्यथा नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्ति को जिंदा रहने का मूल अधिकार प्राप्त है। भारतीय दंड संहिता की धारा 309 में आत्महत्या के लिए उकसाने पर 10 साल की सजा का प्रावधान है। इसके बाद भी आत्महत्या की दर लगातार बढ़ती जा रही है।

आत्महत्या के प्रकार

आत्महत्या को इमाइल दुर्खीम ने सामाजिक आधार पर समझाते हुए इसे एक सामाजिक घटना मानते हुए कहा है कि इसका प्रकटीकरण व्यक्तिगत रूप में होता है। विभिन्न प्रकार के सामाजिक-आर्थिक कारण आत्महत्याओं के लिए उत्तरदायी होते हैं। आत्महत्याओं की विशेषता की समानता एवं भिन्नता के आधार पर दुर्खीम ने उनके प्रकारों का निर्धारण किया है। उनके मत में आत्महत्या के प्रकारों का वर्गीकरण उनको उत्पन्न करने वाले सामाजिक कारकों के आधार पर किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से जितने प्रकार के सामाजिक कारक होंगे उतनी ही प्रकार की आत्महत्याएं होंगी। दुर्खीम आत्महत्या के प्रकारों में धर्म, परिवार, राजनीति, व्यवसाय आदि सामाजिक तत्वों को महत्वपूर्ण मानते हैं। दुर्खीम ने प्रमुख रूप से तीन प्रकार की आत्महत्याओं का वर्णन किया है, जो इस प्रकार हैं :—

1. अहमवादी आत्महत्या (Egoistic Suicide) : दुर्खीम का मानना है कि सामाजिक परिस्थितियां विशिष्ट भावात्मक स्थितियों को जन्म देती हैं जिनके फलस्वरूप व्यक्ति आत्महत्या करता है। अहमवादी आत्महत्या का मूल कारण सामाजिक समूह में विघटन का होना है। दुर्खीम का कहना है कि व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक जीवन में असंतुलन हो जाता है और व्यक्ति स्वयं को समाज के साथ आबद्धित नहीं कर पाता है तो अतिशय वैयक्तिता (Intence

Individualization) की स्थिति आ जाती है। यदि हम इस अवस्था को, जिसमें व्यक्तिगत अहम की शक्ति सामाजिक अहम की तुलना में अधिक बढ़ जाती है। अहमवाद कहने के लिए सहमत हों तो हम अतिशय व्यक्तिवाद से उत्पन्न होने वाली आत्महत्या के विशिष्ट प्रकार को अहमवादी आत्महत्या कह सकते हैं। दुर्खीम के मत में इसे अहमवादी आत्महत्या इसलिए कहा गया है, क्योंकि वैयक्तिता, अहम और सामाजिक पृथकता आत्महत्या के जन्मदाता है। इस प्रकार दुर्खीम के मत में अहमवादी आत्महत्या सामाजिक संगठन के अभाव में होती है।

2. परार्थवादी आत्महत्या (Altruistic Suicide) : जिस प्रकार जब मनुष्य समाज से पृथक हो जाता है, तो उसे अपने अंदर आत्महत्या का सामना करने की शक्ति का कम अनुभव होता है, उसी भांति जब सामाजिक एकीकरण अत्यधिक सुदृढ़ हो जाता है और व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व का कोई मूल्य ही नहीं दिखाई देता, केवल समाज उसकी प्रत्येक क्रिया को यंत्र की भांति निर्देशित करता रहता है उसके व्यक्तिगत हित, रुचियां या विचार पूर्णरूप से अचेतन होकर सामूहिक विचार और सामूहिक रुचि व हितों का अनुसरण करते हैं तो ऐसी स्थिति में होनेवाली आत्महत्याओं को दुर्खीम ने परार्थवादी आत्महत्या कहा है।

3. आदर्शहीन आत्महत्या (Anomic Suicide) : प्रत्येक समाज में मनुष्यों के व्यवहारों को नियंत्रित करने के लिए कुछ विशिष्ट साधन या पद्धतियां विद्यमान हैं। प्रत्येक समाज के कुछ सामाजिक नियम होते हैं, प्रथाएं एवं कानून होते हैं जो व्यवहार-नियंत्रण के आधार तत्व हैं। इन नियमों का पालन जब तक समाज भली भांति करता रहता है, तब तक समाज में व्यवस्था और एकरूपता विद्यमान रहती है, परंतु जब तक लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अपने तरीके से करने लगते हैं, सामाजिक नियमों में शिथिलता आने लगती है तो समाज में अव्यवस्था फैल जाती है। इससे समाज पर अनेक संकट आ जाते हैं। समाज की ऐसी अवस्था, जिसमें समाज के सदस्यों के समक्ष कोई आदर्श नियम नहीं होते हैं, सामूहिक एकरूपता समाप्त हो जाती है, समाज के सदस्य दिशाहीन होकर मनमाना व्यवहार करने लगते हैं, समाज की उस स्थिति को दुर्खीम ने 'आदर्शहीनता' की स्थिति कहा है। इस आदर्शहीन सामाजिक अवस्था के परिणामस्वरूप जो आत्महत्या की जाती है, दुर्खीम उसे आदर्शहीन आत्महत्या कहते हैं।

आत्महत्या को मनोवैज्ञानिकों ने अपने नजरिये से देखा है तो इसी प्रकार से इसका विश्लेषण अलग-अलग दृष्टिकोण से भी किया गया है। इस प्रकार के विश्लेषणों में मनोविकृत अवस्थाएं, उन्माद, उन्मत्तता, अवसाद, बाध्यता, आवेग, स्नायुदोष, मद्यपान, प्राकृतिक, जलवायु, पैतृकता, प्रजाति, भौगोलिक दशाएं मौसमी तापमान आदि लिये गए हैं। आत्महत्या का वास्तविक आधार तो सामाजिक क्रिया है। सामाजिक क्रिया में होनेवाले परिवर्तन ही आत्महत्या के लिए उत्तरदायी हैं। समाजशास्त्र में इमाइल दुर्खीम ने ही आत्महत्या को एक सामाजिक तथ्य मानते हुए इसकी व्याख्या की है। आत्महत्या के अन्य प्रकार भी हो सकते हैं।

आत्महत्याओं के कारण

दुर्खीम ने आत्महत्या के मनोवैज्ञानिक, जैविकीय, प्राकृतिक एवं सामाजिक अनेक कारणों का उल्लेख किया है, किंतु आप मनोवैज्ञानिक और प्राकृतिक दशाओं को आत्महत्या की वास्तविक प्रेरणा नहीं मानते। वास्तविक प्रेरणाशक्ति तो सामाजिक दशाओं में ही निहित होती है। दुर्खीम ने सर्वप्रथम आत्महत्या के सामाजिक कारणों का उल्लेख किया है। विभिन्न प्रकार के कारण निम्नानुसार हैं :—

1. मनोव्याधिकीय अवस्थाएं और आत्महत्या
2. मनोजैविकीय कारक और आत्महत्या
3. भौगोलिक दशाएं एवं आत्महत्या

आत्महत्या के आंकड़ों का विश्लेषण

आंकड़ों का विश्लेषण सच्चाई के नजदीक होता है अगर आंकड़ों का संग्रहण ठीक से किया गया हो। आंकड़ों से पता चलता है कि संपूर्ण संसार में प्रतिवर्ष 8,00,000 लोग आत्महत्या करते हैं। इस संख्या में भारत का हिस्सा 17 फीसदी है। भारत में प्रतिवर्ष लगभग 135000 लोग आत्महत्या करते हैं। सन् 1987 से 2007 तक आत्महत्या दर 7.9 से बढ़कर 10.3 फीसदी हो गई। विश्व स्वास्थ्य संगठन, जेनेवा के पीटर वर्णिक के अनुसार विश्व में चीन में सर्वाधिक आत्महत्याएं होती है। इसके बाद भारत, रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान एवं दक्षिणी कोरिया का स्थान आता है। वर्णिक के अनुसार भारत में आत्महत्या प्रति एक लाख लोगों पर 10.5 फीसदी है जबकि संपूर्ण विश्व में यह दर प्रति एक लाख लोगों पर 11.6 फीसदी है। देश में 2013 के आंकड़ों के अनुसार 11772 किसानों ने आत्महत्याएं की थीं। इन आत्महत्याओं में 292 राजस्थान प्रांत से है। इस वर्ष संपूर्ण आत्महत्याओं में 8.7 फीसदी आत्महत्यायें किसानों के द्वारा की गई।

भारत के विभिन्न राज्यों की स्थिति पर नजर डालेंगे तो पाएंगे कि दक्षिणी राज्यों में आत्महत्या की प्रवृत्ति सर्वाधिक है। देश में पांडीचेरी का आत्महत्या में प्रथम स्थान है जबकि बिहार का अंतिम स्थान है। पांडीचेरी में एक लाख लोगों पर 36.8 फीसदी लोग आत्महत्या करते हैं जबकि बिहार में एक लाख लोगों पर 0.8 फीसदी लोग आत्महत्या करते हैं। इसी तरह अगर हम भारतवर्ष में आत्महत्या के विभिन्न आयामों पर नजर डालें तो पाएंगे कि यहां पर वर्ष 2012 में 46000 लोगों ने 15 से 29 एवं 30-44 वर्ष की आयु में आत्महत्या की तथा संपूर्ण संख्या में इनका हिस्सा 34 फीसदी था। अगर हम शिक्षा के आधार पर विश्लेषण करेंगे तो पाएंगे कि 80 फीसदी आत्महत्याएं पढ़े-लिखे लोगों द्वारा की गईं। वर्ष 2012 में देश में 19120 आत्महत्याएं बड़े शहरों में की गईं। इस वर्ष में चेन्नई में सर्वाधिक 2183 तथा इसके बाद दिल्ली में 1397 और बंबई में 1296 लोगों ने आत्महत्याएं कीं। जबलपुर तथा कोलाम में 45.1 फीसदी और 40.5 फीसदी आत्महत्याएं दर्ज की गई थीं जो देश में सर्वाधिक थीं।

अगर हम आत्महत्याओं के तरीकों पर जाएं तो पाएंगे कि जहर खाने से 33 फीसदी, फांसी खाकर 31 फीसदी और स्वयं की बली चढ़ाकर 9 फीसदी आत्महत्याएं की जाती हैं। भारत में अगर लिंग के आधार पर आत्महत्याओं का विश्लेषण करें तो यह अनुपात मर्द एवं औरत में 4:3 है। वर्ष 2012 के आंकड़ों के अनुसार और सभी प्रकार की आत्महत्याओं में 46फीसदी आत्महत्याओं के कारण पारिवारिक समस्या और बीमारी आदि थे। इसी तरह मादक द्रव्य 3.3 फीसदी, प्रेम प्रसंग 3.2 फीसदी, बैंक दिवालियापन एवं अचानक अर्थव्यवस्था में आये उतार-चढ़ाव 2.0 फीसदी, गरीबी से 1.9 फीसदी एवं दहेज प्रताड़ना जैसे विवाद के कारण 1.6 फीसदी आत्महत्याएं की गई थीं।

आत्महत्या की घटनाएं, जनसंख्या की वृद्धि एवं दर 2008 से 2012 के दौरान

क्र.सं.	वर्ष	कुल संख्या	जनसंख्या (लाखों में)	आत्महत्या की दर
1.	2008	125017	11531.3	10.8
2.	2009	127151	11694.4	10.9
3.	2010	134599	11857.6	11.4
4.	2011	135585	12101.9	11.2
5.	2012	135445	12133.7	11.2

भारत में किसानों की आत्महत्याओं के आंकड़े

भारत में किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्याओं में लगातार वृद्धि हो रही है। एक कृषि प्रधान देश के लिए यह एक गंभीर चिंता का विषय है। राष्ट्र में सन् 2014 में 12,360 किसानों द्वारा आत्महत्याएं की गईं, यह संख्या पूर्व वर्ष से थोड़ी अदिक है। इस वर्ष महाराष्ट्र में सर्वाधिक किसानों ने आत्महत्याएं की हैं।

NUMBER AND RATE OF SUICIDES FOR FARMERS AND REST OF POPULATION IN THE MAJOR FARM CRISIS STATES IN 2011

State	No. of Suicides, 2011		Farmers' Suicides as a percent of all suicides, 2011	Suicide Rate (per 100,000 members) 2001 & 2011 comparison			
				Farmers (Main Cultivators)		Rest of population	
	Farmers	Rest of population		2001	2011	2001	2011
Chhattisgarh	1567	5189	23.2	41.6	51.6	15.6	24.1
Maharashtra	3337	12610	20.9	34.7	29.1	13.0	12.6
Karnataka	2100	10522	16.6	40.5	34.8	20.4	19.3
Andhra Pradesh	2206	12871	14.6	20.4	36.2	13.2	16.5
Madhya Pradesh	1326	7933	14.3	15.4	16.1	11.1	12.6
India	**15652**	**121558**	**11.4**	**15.8**	**16.3**	**10.2**	**11.1**

Note: * **In 2011,** Chhattisgarh reported 'zero' suicides amongst farmers. So number of farm suicides for Chhattisgarh here and its percentage to all suicides is an average of **TE 2010, i.e. average of 2008, 2009 and 2010.** Figures given for India are adjusted to Chhattisgarh triennium average.

Source: 1) Accidental Deaths & Suicides in India, 2011: National Crime Records Bureau 2) Census of India, 2011 and 2001. 3) Nagaraj, K. Farmers suicides in India: Magnitudes, Trends and Spatial Patterns. www.macroscan.com (March 2008) Table Credit: Mr. Gopinath of M.S. Swaminathan Research Foundation

आत्महत्या का सामाजिक प्रभाव

आज समाज में आत्महत्या एक विकराल समस्या बनकर उभरी है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में अन्नदाता कहे जानेवाले किसान लाखों की तादाद में आत्महत्याएं कर रहे हैं। नौजवान युवक-युवतियों में तो यह प्रवृत्ति तीव्र गति से बढ़ रही है। विधाता की सृष्टि के स्थापित नियमों के विरुद्ध जाकर मानव एक नया इतिहास बना रहा है। विश्व के अनेक देशों ने इच्छामृत्यु को वैधता प्रदान कर दी गई है तथा अनेक देश इस पर विचार कर रहे हैं। जहां एक ओर मृत्युदंड पर प्रतिबंध पर वैश्विक बहस चल रही है, वहीं आज स्वयं द्वारा स्वयं को मारने की होड़ मची हुई है। मृत्युदंड पर रोक लगाने का जो तर्क दिया जा रहा है वह यह है कि जो जीवन दे नहीं सकता वह ले कैसे सकता है। यही आधार आत्महत्या में भी अपनाना चाहिए। आत्महत्या आज दुखी व्यक्तियों का दुःख से निजात पाने का अनुकरणीय सिद्धांत बन गया है। यद्यपि अनुकरण को एक मानसिक प्रक्रिया कहा जाता है, जो व्यक्ति को दूसरों के समान क्रिया के लिए प्रवृत्त करती है। अनुकरण को तीन अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है :—

1. अनुकरण का एक अर्थ तो यह होता है जिसमें किसी समान कारण से प्रभावित होकर किसी सामाजिक समूह के लोग एक संगठित चेतना के रूप में समान रूप से सोचते या अनुभव करते हैं।

2. इसका दूसरा अर्थ वह प्रेरणा है जिसके द्वारा व्यक्ति समाज में प्रचलित विचारों, प्रथाओं अथवा क्रियाओं के अनुरूप व्यवहार करता है।

3. अनुकरण का तीसरा अर्थ वह है जिसमें किसी देखी हुई अथवा जानी हुई घटना अथवा क्रिया को व्यक्ति स्वयं करता है। दुर्खीम ने तीसरे अर्थ को स्वीकार किया है जिसमें किसी क्रिया को देखकर व्यक्ति स्वयं उसी प्रकार की क्रिया करता है जैसे हंसते व्यक्ति को देखकर

स्वयं हंस देना, रोते को देख रो देना आदि अनुकरण के उदाहरण है जिसमें अनुकरण के लिए ही अनुकरण किया जाता है। यह एक यांत्रिक प्रवृत्ति है और मूल क्रिया की प्रतिध्वनि है जिसका कोई बाह्य कारण नहीं होता। इस रूप में अनुकरण एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है और यदि व्यक्ति इसी अनुकरण के आधार पर आत्महत्या कर लेता है तो आत्महत्या का आधार मनोवैज्ञानिक और असामाजिक भी हो सकता है। इस संदर्भ में हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि आत्महत्या एक प्रभावकारी सामाजिक तथ्य है। इस सामाजिक तथ्य का वर्तमान में द्रुतगति से प्रभाव पड़ रहा है। इस प्रभाव का शोधपरक दृष्टि विश्लेषण करना समाज के लिए अति उपयोगी है। वर्तमान परिस्थितियों में इसकी उपादेयता और बढ़ जाती है।

आज आत्महत्या पर बहुत कम साहित्य उपलब्ध है। शोध तो बिल्कुल ही नहीं है। समाजशास्त्र में इस विषय के संस्थापकों में से एक इमाइल दुर्खीम ही हैं जिन्होंने सन् 1897 में इस ओर संपूर्ण संसार का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने अपनी महत्वपूर्ण कृति आत्महत्या (The Suicide 1897) में तीन खंडों में आत्महत्या पर प्रामाणिक विवेचना प्रस्तुत किया। इस पुस्तक के महत्व को बीरस्टीड ने रेखांकित करते हुए लिखा है, यह समाजशास्त्रीय अनुसंधान की महानतम-कृतियों में से एक तथ्यपरक कृति है। समाजशास्त्र में अनुसंधान का इतिहास वास्तव में इस पुस्तक से प्रारंभ होता है और यद्यपि इसके प्रकाशन के पश्चात् इतने वर्षों में इसके निष्कर्षों में परिष्कार किया गया है, इसका महत्व कम नहीं हुआ है। आज समाज आत्महत्या के भयंकर संक्रामक रोग से जूझ रहा है। समाजशास्त्रियों को इस ओर ध्यान देकर इसके विभिन्न पहलुओं पर शोध करने की आवश्यकता है।

आत्महत्याओं के निराकरण के उपाय

आज समाज में एक अजीब किस्म का तनाव है। सामुहिकता का स्थान सिकुड़ता जा रहा है। दुर्खीम के मत में सामाजिक समूह की पर्याप्त निरंतरता की पुनर्स्थापना करना जरूरी है। आज प्राथमक समूह के रूप में परिवार की भूमिका भी सीमित हो गई है। दुर्खीम ने आत्महत्याओं की बृद्धि का कारण सामुहिक जीवन में उत्पन्न होने वाले दोषों को बताया है, जिन्हें दूर करके ही नैतिक शक्ति की प्रगति की जा सकती है। दुर्खीम के अनुसार आत्महत्याओं को रोकने के लिए स्थानीय समूहों का पुनर्निर्माण करना आवश्यक है जो स्वतंत्र सत्ता रखते हुए भी केंद्रीय राजसत्ता के अधीन हों, जिसे दुर्खीम ने विकेंद्रीकरण कहा है। आत्महत्या के निराकरण में दुर्खीम विकेंद्रीकरण को आवश्यक मानते हैं।

मोरसेलि और फ्रेंक आदि के मत में आत्महत्या की दर कम करने का सर्वोत्तम साधन शिक्षा हो सकती है। आत्महत्या के निराकरण के उपाय समय सापेक्ष होते हैं। आज के दौर में प्राचीन काल से चले आ रहे तौर-तरीके लागू करना असंभव है। आज सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में संचार के साधनों का भरपूर इस्तेमाल कर आत्महत्याओं को कम किया जा सकता है। इसी तरह योग, सामूहिकता, संगीत, मनोरंजन आदि पर ध्यान दे कर आत्महत्याओं का निराकरण किया जा सकता है।

संदर्भ-सूची

1. दि हिंदू, जुलाई 24, 2015

2. दुर्खीम, सुसाइड, पृ. सं. 44

3. गुप्ता एवं शर्मा (2014), सामाजिक विचारक, साहित्य पब्लिकेशन, पृ. सं. 51

भारत में यौन हिंसा : आखिर कब तक?

डा. मेनका
वीमेन पोस्ट डाक्टोरल, फेलोशिप दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

फ्रायड के अनुसार—'यौनिकता एक प्रचंड शक्ति है' भारतीय पितृसत्तात्मक समाज में वंश-परंपरा की शुद्धता के नाम पर स्त्री की यौन-पवित्रता पर चरम आग्रह रहा है। स्त्री की पवित्रता बलपूर्वक नष्ट हो जाए तो वह स्त्री के लिए सबसे बड़ा कलंक है। इसलिए प्रायः प्राचीन काल में संत महापुरुषों द्वारा स्त्री व पुरुष के बीच अवांछित घटनाओं को रोकने के लिए उनके अलग-अलग रहने की व्यवस्था की गयी थी। परिणामस्वरूप स्त्रियों की स्वतंत्रता का दमन किया गया। स्त्रियों को घर की शोभा बनाकर घर की चाहरदीवारी में कैद कर दिया गया। पुरुष की सर्वग्राही सत्ता के बोझ तले स्त्रियों की सुरक्षा पुरुषों के द्वारा होनी लगी, वही सर्वशक्तिमान बन बैठा व उसकी मर्जी को ही प्रथम व आखिरी माना गया। स्त्रियों को कमजोर वर्ग की श्रेणी में रखकर पुरुषों की मर्दानगी का बखान होने लगा—इस पंक्ति पर गौर कीजिए—

"खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।"

यहां लेखक द्वारा एक नारी की महानता की तो बखान किया जा रहा है, लेकिन मर्दानगी शब्द जोड़कर यहां पुरुष की महानता को स्पष्ट किया है कि पुरुष के समान वह नारी अपनी वीरता का परिचय दे रही है। महिलाओं के प्रति अत्याचार करने का हमारा इतिहास भी गवाह है। हमारे धार्मिक ग्रंथ और पुराण भी महिलाओं की सिसकन, वेदना, कसक व उनके प्रति अत्याचार से यंत्र-तंत्र जुड़े हुए हैं। "अहिल्या" का अपराध क्या था? मात्र यह है कि रूपवती थी। इस सुंदर स्त्री पर देवताओं के राजा इंद्र का दिल आ जाता है। इंद्र ने छल का सहारा लेकर गौतम ऋषि की अनुपस्थिति में उन्हीं का रूप धारण करके अहिल्या से संबंध बनाएं। तत्पश्चात मुंह छुपाकर भाग रहा था। ऋषि महर्षि ने यह देखकर अहिल्या को शाप दिया कि वह पत्थर हो जाए। लेकिन इसमें अहिल्या का अपराध क्या था? पाप इंद्र द्वारा और सजा अहिल्या को। इसी तरह सीता व द्रौपदी भी पुरुषवाद समाज में उत्पीड़न की शिकार हुईं। रावण के द्वारा सीता का बलपूर्वक अपहरण करना और एक बार फिर सजा की भागीदारी एक औरत।

श्रीराम के द्वारा एक तीसरे व्यक्ति के कहने पर अपनी शान को बनाए रखने के लिए गर्भवती सीता को जंगल में छोड़ देने की सजा मिलती है। फिर एक बार प्रश्न उठता है कि सीता का अपराध क्या था? इसी प्रकार द्रौपदी जो अर्जुन से विवाह करती है और अर्जुन द्वारा अपनी संपत्ति समझते हुए पांचों भाइयों में समान रूप से बांट दी जाती है। इतना कम नहीं था कि युधिष्ठिर द्वारा दांव पर भी लगा दी जाती है और भरी नीति और प्रतिष्ठा की बात करनेवालों से इतना भी नहीं हुआ कि उस दुष्ट को रोका जाए, दंड देने की बात तो दूर है। इतिहास ऐसे कई उदाहरणों से भरे पड़े हैं जहां महिलाओं के प्रति हिंसा, उत्पीड़न, अपहरण व बलात्कार की घटनाएं होती हैं। महिला की सुरक्षा एक बड़ा ही अहम प्रश्न है कि वे कहां सुरक्षित हैं? आज वे अपने घर में ही असुरक्षित हैं।

एक बीमार संवेदनशील विकृत मानसिकता से परिपूर्ण समाज में बलात्कार एक महामारी का रूप धारण कर चुका है जहां छह वर्ष की मासूम बच्ची से लेकर पिच्चासी वर्ष तक की वृद्धा के साथ बलात्कार किया जा रहा है। यह यौन हिंसा यौन राक्षसी भूख से जन्मा कोढ़ है। यह छोटे-छोटे गांव से लेकर मेट्रो जैसे शहर तक फैल चुका है। 25 दिसंबर, 2012 को हमारे देश की राजधानी दिल्ली में चलती बस में जिस तरीके से एक लड़की के साथ नृशंस तरीके से सामूहिक

बलात्कार किया गया और भीषण ठंड में बिना कपड़ों के बस से फेंक दिया गया। इस घटना ने संपूर्ण देश व मानवता को झकझोर कर रख दिया। चारों तरफ महिलाओं की सुरक्षा के प्रश्न उठने लगे। अभी हाल में 19 मई, 2015 को 42 वर्ष से कोमा में सांस ले रही अरुणा शानबाग (66) का निधन हो गया। 23 नवंबर, 1973 की घटना है जब अरुणा शानबाग को सोहन लाल, 'बाल्मिकी' नाम के एक वार्डबाय द्वारा दुष्कर्म का शिकार होना पड़ा। अरूणा ने जब बचाव का प्रयास किया तो जंजीर के द्वारा उनका गला घोंटने का प्रयास किया गया। जिसकी वजह से वह कोमा में चली गयीं। पिछले 42 सालों से अरुणा से जिंदगी की खुशियां अनुभव करने का हक छीन लिया गया था। उनकी युवावस्था को निदर्यतापूर्वक छिन लिया गया और उन्हें अंत तक न्याय नहीं मिला।[1] फिर एक बार सवाल यह उठता है कि यहां अपराध किसका है? इसका जवाब कौन देगा हम, आप, बड़े-बड़े राजनेता, या सरकार।

क्या बलात्कार मानसिक विक्षिप्तता और पाशविक प्रवृत्ति की देन है? कहीं बलशाली व्यक्ति का डर, कहीं माफियाओं का दबाव, कहीं बदले की भावना, कहीं सेक्स का पागलपन का दौरा इतना तीव्र होता है कि अपने संबंधी भी दुष्कर्म करने से नहीं चुकते हैं। यहां यौन संतुष्टि की कामना और सुख गौण है। बदले की भावना मुख्य है। अपनी हवस का शिकार नहीं बना पाने पर उनके अंग काट देने (नाक, कान, बाल, अंगुलियां आदि), तेजाब फेंक देने जैसी घिनौने कृत्यों को अंजाम देते हैं। दुष्कर्म पीड़िता को न्याय के बदले में उसकी महानता का बखान करते हुए 'दामिनी' जैसे शब्दों से संबोधित करते हैं।

न्यूयार्क सिटी एंलायस अगेंस्ट सेक्सुअल असाल्ट द्वारा प्रायोजित इंटरनेट आधारित मिशन 'लिसन' के मुताबिक दुनिया में 4 में से 1 महिला अपने जीवन में किसी-न-किसी तरह के यौन उत्पीड़न या समकक्ष अपराध से पीड़ित है। भारत में यह आंकड़ा 10 में से 7 महिलाएं इस तरह के अपराध की शिकार बनती हैं। राष्ट्रीय अपराध लेखा ब्यूरो के आंकड़ों के मुताबिक देश में हर 20 मिनट में एक दुष्कर्म का मामला दर्ज होता है।

2010-2011 के दौरान पूरे देश में महिलाओं के खिलाफ जितने अपराध हुए, उनमें 13 प्रतिशत अकेले राजधानी दिल्ली में थे। उसके बाद बेंगलूरू, हैदराबाद और विजयवाड़ा का नंबर है। इस दौरान देश के 53 शहरों में अकेले दिल्ली में दुष्कर्म की 17.6 प्रतिशत और अपहरण की 32 प्रतिशत घटनाएं दर्ज हैं।

महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध की तुलनात्मक स्थिति : वर्ष 2010-2011

अपराध—वृद्धि दर (प्रतिशत), सबसे खराब स्थिति वाला राज्य-कुल मामले (वृद्धिदर)।

1. दुष्कर्म—9.2 मध्य प्रदेश—3406 (14.1)

2. अपहरण—19.4 उत्तर प्रदेश—1725 (21.2)

3. दहेज हत्या—2.7 उत्तर प्रदेश—2322 (26.9)

(दूसरे स्थान पर बिहार—1413 मामले—16.4 फीसद बढ़ोत्तरी)

4. पति/परिजनों द्वारा उत्पीड़न—5.4—पश्चिम बंगाल—19772 (19.9)

5. छेड़छाड़—5.8—मध्यप्रदेश (15.5)

6. यौन शोषण—14—आंध्र प्रदेश 3658 (42.7)

7. लड़कियों की तस्करी—122—मध्यप्रदेश—45 (80 में से)

एक मीडिया अध्ययन (सी. वोटर) का विचार है कि महानगरों में महिलाओं के साथ बलात्कार, प्राणघातक हमले और हत्याओं के मामले पराकाष्ठा पर पहुंच चुके हैं। सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि दिल्ली में 86 प्रतिशत महिलाएं असुरक्षित महसूस करती हैं। इसलिए आज दिल्ली को बलात्कार की राजधानी की संज्ञा दी जाती है।

उपर्युक्त आंकड़े यह बयान करते हैं कि हमारे देश में महिलाओं की स्थिति क्या है? पुरुष की विक्षिप्त मानसिकता, उनकी सुरक्षा व न्याय व्यवस्था में सेंध लगा

रहे हैं। महिलाओं के कपड़े, कमर मटकाने, मेकअप आदि कारणों को बलात्कार के बढ़ते आंकड़े के लिए उत्तरदायी मानते हैं। मेरा मानने वालों से यह प्रश्न है कि मासूम बच्चियां कौन से कपड़े व कमर मटकाती है जो यह घटना उनके साथ घटित होती है। यदि आंकड़ों पर ध्यान दें तो विगत 10 वर्षों में यानी 2001 से 2011 के दौरान भारत में बच्चों पर होनेवाले बलात्कारों की संख्या 48,338 पहुंची है। अगर वर्ष 2001 में 2,113 मामले सामने आए थे तो वर्ष 2011 तक आते-आते इनकी संख्या 7,112 तक पहुंची है।

यौन हिंसा और कानून

महिलाओं के यौन उत्पीड़िन और दुष्कर्म के कानून को सख्त बनाने वाले अध्यादेश पर राष्ट्रपति 'श्री प्रणव मुखर्जी' ने 03 फरवरी रविवार 2013 को अपनी मंजूरी दे दी। दुष्कर्मी हत्यारों को मौत की सजा देने का प्रावधान कानून में शामिल हो गया है। अध्यादेश लागू होने के बाद दुष्कर्म और हत्या या पीड़िता को मरणासन्न स्थिति (कोमा) में पहुंचाने वाला अपराधी कुछ वर्ष जेल काटकर बाहर नहीं घूम पाएगा, अब या तो उसे मौत की सजा मिलेगी या फिर जीवनपर्यंत जेल काटेगा।

● दुराचार जैसे अपराधों के खिलाफ कड़ी सजा के प्रावधान करने के मकसद से नए कानून में कारावास की अधिकतम सजा को 10 वर्ष से बढ़ाकर 20 वर्ष कर दी गई जिसे किसी भी परिस्थिति में कम नहीं किया जाएगा लेकिन इसे आजीवन कारावास तक में तब्दील किया जा सकता है।

● कानून के मुताबिक आजीवन कारावास का मतलब दोषी के प्राकृतिक जीवन काल तक से है अर्थात जब नैसर्गिक मौत नहीं मरता।

● इस कानून में प्रावधान किया गया है कि दुराचार के अपराध के लिए पहले भी दोषी ठहराए जा चुके अपराधी को मौत की सजा दी जा सकती है।

● इस कानून के तहत पीछा करने और घूर-घूर कर देखने को गैर जमानती अपराध घोषित किया गया है। बशर्ते अपराधी दूसरी बार यह अपराध करते पकड़ा जाए।

● महिला को निर्वस्त्र करने पर उसे 07 वर्ष तक का कारावास।

● ताकझांक करने के अपराध में 03 वर्ष तक का कारावास।

● महिलाओं पर तेजाबी हमला करनेवालों को 10 वर्ष की सजा का भी प्रावधान किया गया है। इसमें पीड़ित को आत्मरक्षा का अधिकार प्रदान करते हुए तेजाबी हमले की अपराध के रूप में व्याख्या की गयी है।

● दुराचार या तेजाब के हमले की पीड़ित को तुरंत प्राथमिक सहायता व मुफ्त उपचार उपलब्ध कराए जाने का प्रावधान किया गया है। ऐसा करने में विफल होने पर भी सजा का प्रावधान किया गया है।

● कानून की सहमति से यौन संबंध बनाने की उम्र 18 वर्ष तय की गयी है।

● यदि दोषी व्यक्ति पुलिस अधिकारी, लोक सेवक, सशस्त्र बलों या प्रबंधन या अस्पताल या कर्मचारी है तो उसे जुर्माने का भी सामना करना होगा।

● कानून में भारतीय साक्ष्य अधिनियम में संशोधन किया गया है, जिसके तहत दुराचार पीड़िता को, यदि वह अस्थायी रूप से मानसिक या शारीरिक रूप से अक्षम हो जाती है तो उसे अपना बयान दुभाषिए या विशेष एजुकेटर की मदद से न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष दर्ज कराने की भी अनुमति दी गयी है। इसमें कार्रवाई की वीडियोग्राफी कराने का भी प्रावधान किया गया है।

● पीछा करना या छेड़खानी करने पर न्यूनतम 01 वर्ष तक का कारावास।

● दुष्कर्म की परिभाषा में दुष्कर्म शब्द की जगह 'यौन हमला' किया गया, जिससे लिंग भेद खत्म हुआ।

● हिरासत या सुरक्षा में दुष्कर्म पर न्यूनतम 10 वर्ष और अधिकतम उम्र कैद की सजा का प्रावधान है।

● जानबूझकर छूना या अश्लील हरकत को अलग से अपराध में शामिल किया गया।

● 18 वर्ष से कम और 65 वर्ष से अधिक उम्र के पुरुष व किसी भी महिला के लिए थाने में हाजिर होना जरूरी नहीं।

● धारा—376ए (अलग करने के दौरान पत्नी के साथ शारीरिक संबंध बनाना) को खत्म कर वैवाहिक दुष्कर्म को दुष्कर्म की परिभाषा के दायरे में लाया गया है। सरकार ने वर्तमान में ऐसे अपराधों के लिए 02 वर्ष की सजा को तो बढ़ाकर 07 वर्ष कर दिया है लेकिन धारा को बरकरार रखा है।

● मानव तस्करी के मामलों में 10 वर्ष से मृत्युपर्यंत तक सजा।

यौन हिंसा और न्याय व्यवस्था

बलात्कार की समस्या न केवल महिलाओं की बल्कि पूरे समाज की होनी चाहिए। जाहिर है कि यह अस्तित्व की लड़ाई है। यह पुरुषवादी मानसिकता के खिलाफ जंग है और मीडिया की ग्लैमराइज्ड भूमिका पर भी आक्रोश है। आधुनिक समाज में महिलाओं को 'सेक्स आब्जेक्ट' की तरह देखा जाता है। एक तरह से उससे जुड़ी हर चीज़, हर घटना का इस्तेमाल हो रहा है। उसे भुनाने का कुप्रचलन बढ़ा है। यह काम विज्ञापन, बालीवुड और मीडिया भी करता आ रहा है। इसलिए आत्ममंथन का समय आ गया है।

सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से आज भी महिलाएं बहुत अधिक असुरक्षित हैं, उन्हें हर तरह की सुरक्षा मिलनी चाहिए। जरूरी है पुरुष की सोच में सकारात्मक परिवर्तन होना। एक अच्छा चरित्रवान समाज तभी बनेगा, जब हम सभी को सम्मान व आदर देंगे। जिस देश में नारी को शक्ति स्वरूपा माना जाता है फिर उस देश की नारी के साथ बलात्कार, छेड़छाड़, वेश्यावृत्ति, घरेलू हिंसा जैसे अपराधों को बढ़ावा क्यों मिल रहा है? क्या शिक्षित, प्रगतिशील और स्वतंत्र देश की यही पहचान है? आज सबसे बड़ा सवाल यह है कि इस तरह की घटनाएं रोकने के लिए महिलाओं, समाज व सरकार को क्या करना चाहिए।

● महिलाओं को जागरूक बनाना चाहिए, ताकि वे हिम्मत जुटा सकें। अपने अधिकारों के प्रति व अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के प्रति महिलाओं को जागरूक करना होगा कि अपने आत्मसम्मान के लिए खुद भी लड़ना पड़ता है। लोगों की यह धारणा बदलनी होगी कि लड़कियां कमजोर होती हैं, बिना सहारे के आगे नहीं बढ़ सकती हैं। यदि ऐसा होता तो देश के सर्वोच्च पद पर आज अनेक महिलाएं शीर्षस्थ न होतीं।

● दुष्कर्म की शिकार हो जाने पर स्त्री/महिला के माता-पिता एवं परिजन सामाजिक निंदा से बचने के लिए इस घटना को जहां का तहां दबा देना चाहते हैं। घर परिवार में घटती ऐसी घटना के पता चलने पर परिवार कलंकित हो जाएगा, सामाजिक बहिष्कार, ऐसे लड़कियों का विवाह नहीं होगा, मुंह दिखाने लायक नहीं रहेंगे, इस भय से पुलिस में रिपोर्ट दर्ज नहीं कराते हैं। ऐसे में हमें माता-पिता को भी जागरूक करना होगा कि यह सब बातें भ्रामक हैं। न्याय के लिए आवाज उठाना गलत नहीं है।

● इस अपराध की शिकायत करने पर पुलिस को त्वरित रिपोर्ट दर्ज कर अपराधियों के खिलाफ कार्रवाई करनी चाहिए। पीड़िता को सुविधाएं मुहैया कराएं। अक्सर ऐसा होता है कि रिपोर्ट हो जाने पर आरोपी व्यक्ति अपने धन, पद, शक्ति अथवा परिचय के आधार पर पीड़िता को धमकी व रिपोर्ट वापस लेने को कहता है या पुलिस को रिश्वत देकर अपने पक्ष में कर लेता है। ऐसे पुलिस वालों के खिलाफ सख्त कार्रवाई करनी चाहिए।

● दुष्कर्म की घटना का पता चलते ही पीड़िता व बलात्कारी की तुरंत डाक्टरी जांच अवश्य करानी चाहिए, ताकि सबूत प्राप्त किए जा सकें। डाक्टरी जांच में देर होने या डाक्टर की लापरवाही या डाक्टर—आरोपी की परस्पर मिली भगत से यह साक्ष्य नष्ट हो जाते हैं।

● ऐसे मुकदमे में पीड़िता का नाम-पता नहीं प्रगट किया जाना चाहिए।

● एक ऐसे बोर्ड का गठन हो, जो पीड़िता की

शारीरिक क्षति, मानसिक संताप आदि को ध्यान में रखकर उसे क्षतिपूर्ति के रूप में मुआवजा दिला सके।

● कानून व्यवस्था सशक्त होना चाहिए। ऐसे मामले में सरकार भी सोयी रहती है। कोर्ट कचहरी से फैसला आने में सालों तक लग जाते हैं और गुनहगार लोग वही हरकतें दोहराने को आजाद रहते हैं यदि इन आरोपियों के खिलाफ फैसला जल्द होगा तो उसे अपने अपराध का एहसास होगा और आगे ऐसे कृत्य को दोहराने में डरेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डा. रवींद्र कुमार पाठक, 'जनसंख्या-समस्या के स्त्री-पाठ के रास्ते', 2010, नई दिल्ली, पृ.सं.72-96।

2. सरला माहेश्वरी, 'समान नागरिकता संहिता', 2004, दिल्ली, पृ.सं. 19-79।

3. लता सिंहल, 'भारतीय संस्कृति में नारी', परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, पृ.सं.-27-28।

4. पी.एच. प्रभु, 'हिंदू समाज की व्यवस्था', दिल्ली, पृ.सं. 16।

5. बी.एन. सिंह, जनमेजय सिंह, 'आधुनिकता एवं नारी सशक्तिकरण', 2010, नई दिल्ली, पृ.सं. 32, 200।

6. सच्चिदानंद, 'हिंसा की सभ्यता', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 149।

7. राष्ट्रीय सहारा, 5 नवंबर, 2008।

8. हिंदुस्तान, 10 मई, 2009।

9. अमर उजाला, 3 फरवरी, 2008।

10. दैनिक जागरण, 2014।

11. दैनिक जागरण, 19 मई, 2015।

स्वापक औषधि एवं मनःप्रभावी द्रव्य तस्करों का पी.आई.टी. एन.डी.पी.एस. अधिनियम 1988 के तहत निवारक अवरोध (डिटेंसन)

प्रदीप कुमार शर्मा
निरीक्षक
केंद्रीय गुप्तचर प्रशिक्षण स्कूल, ब्लॉक ए एंड बी
केंद्रीय सदन परिसर, सैक्टर-10, विद्याधर नगर
जयपुर-302023

स्वापक औषधि एवं मनःप्रभावी द्रव्यों के अवैध व्यापार की प्रभावी रोकथाम के लिए स्वापक औषधि एवं मनःप्रभावी द्रव्य अधिनियम 1985 भारत सरकार द्वारा बनाया गया था। इसमे अफीम अधिनियम 1857 एवं 1878 एवं खतरनाक औषधि अधिनियम 1930 की तुलना में कठोर सजा का प्रावधान किया गया था। अधिनियम में उक्त अपराध को संज्ञेय एवं अजमानतीय माना गया, लेकिन तकनीकी आधार एवं अधिनियम में उचित प्रावधानों के अभाव में अपराधियों को जमानत पर रिहा होने के अवसर उपलब्ध होते रहे।

दूसरी तरफ यह भी देखा गया कि ड्रग तस्करी एक संगठित अपराध होने की वजह से अपराधी पर्दे के पीछे से अपने कृत्यों को अंजाम देते हैं। इस अवैध कारोबार को बहुत ही सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित तरीके से किया जाता है जिसमें मुख्य अपराधी एवं सरगना को गिरफ्त में लेना हमेशा विधि प्रवर्तन अभिकरणों के लिए चुनौती का विषय रहा है। मुख्य अपराधी एवं सरगना अल्प समय में ही अपार धन संपत्ति प्राप्त कर लगातार अपनी आपराधिक गतिविधियां जारी रखता है और मुश्किल से ही कोई सबूत अपराध साबित करने के लिए छोड़ता है। इस प्रकार वह आदतन एवं पेशेवर अपराधी बन जाता है और यह विधि प्रवर्तन अभिकरणों के लिए हैरान करनेवाली बात होती है।

एन.डी.पी.एस. एक्ट 1985 में अपराधियों द्वारा अवैध व्यापार से अर्जित की गई संपत्ति के संबंध में प्रावधान नहीं किए गए थे। अपराधी अपने नाम से, निकट संबंधियों के नाम से या सहयोगियों के नाम से संपति जमा कर लेते थे। प्रथमतः तो मुख्य अपराधी कानून की गिरफ्त में आने से बच जाता था और कदाचित कानून की गिरफ्त में आ भी गया तो ठोस सबूतों के अभाव में न्यायालय से बच निकलता था। यदि सजा हो भी गई तो धन-बल से जेल में सुविधाएं जुटा लेता था। उसके निकट रिश्तेदार एवं सहयोगी विलासिता का जीवन जीते थे और उसके आपराधिक कृत्यों को जारी रखते थे।

जैसी अपेक्षा की गयी थी उस प्रकार के अनुकूल परिणाम एन.डी.पी.एस. एक्ट 1985 के लागू होने के बाद देखने को नहीं मिले। भारत सरकार का इस ओर ध्यान गया ओर एक अतिरिक्त विधान बनाने की आवश्यकता महसूस की गई एवं इस निमित्त एक कैबिनेट कमेटी का गठन कर आवश्यक सुझाव देने के लिए कहा गया। कैबिनेट कमेटी की सिफारिशों के अनुरूप एक नया विधान स्वापन औषधि एवं मनःप्रभावी द्रव्य अधिनियम, अवैध तस्करी निवारण अधिनियम 1988 (पी.आई.टी.एन.डी.पी.एस. एक्ट) पास किया गया जो दिनांक 4 जुलाई, 1988 को लागू हुआ। इसमें मुख्य रूप से तस्करों की अवैध संपत्ति की जब्ती एवं निवारक अवरोध के प्रावधान शामिल किए गए।

निवारक अवरोध का प्रावधान कोई पूर्व में बनाए गए सामान्य विधान का परिवर्तन नहीं है बल्कि यह तो विधि प्रवर्तन अभिकरणों को दी गई एक अतिरिक्त शक्ति है जो इस प्रकार के संगठित अपराधों को नियंत्रित करने के लिए आवश्यक थी। एन.डी.पी.एस. एक्ट में अपराध एवं अपराधियों की रोकथाम के प्रावधान अपनी जगह है, लेकिन कभी ऐसी भी विशिष्ट परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं जब एक नामचीन ड्रग तस्कर को विधि प्रवर्तन अभिकरण द्वारा तस्करी के आरोप में गिरफ्तार किया जाता है। उसके विरुद्ध न्यायालय में आरोप-पत्र पेश किया हुआ है तथा मामला विचारण में होता है।

इसी बीच उसको न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया जाता है। जमानत का लाभ लेकर उसके द्वारा साक्ष्य को नष्ट करने एवं गवाहों को प्रभावित करने की प्रबल संभावना है। इसी बीच वह पुनः पर्दे के पीछे से मादक पदार्थों की तस्करी को जारी रख सकता है। ऐसी स्थिति में विधि प्रवर्तन संस्थाएं क्या करें। ऐसी स्थिति में इस अधिनियम में किए गए निवारक अवरोध के प्रावधान ही उसके लिए मददगार हो सकते हैं और उस व्यक्ति का निवारक अवरोध किया जा सकता है।

निवारक अवरोध किसका किया जा सकता है

1. आदतन एवं संगठित अपराधी जिनको ड्रग तस्करी करते हुए पकड़ा गया था, लेकिन उनको जमानत मिल जाती है। विधि प्रवर्तन अभिकरण को ऐसा युक्ति-युक्त प्रतीत होता है कि उस अपराधी को अभियोग पूर्ण होने तक अवरोध में रखा जाना जरूरी है।

2. ड्रग तस्करी के ऐसे अपराधी जिनके द्वारा साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने एवं गवाहों को प्रभावित करने का अंदेशा है।

3. ड्रग तस्करी के ऐसे अपराधी जो भगोड़े/फरार हैं।

4. ऐसे अपराधी जो पर्दे के पीछे रहकर अवैध मादक पदार्थो की तस्करी से जुड़े हुए हैं।

5. ऐसे ड्रग तस्करी के अपराधी, जिन्होंने ड्रग के अवैध कारोबार से अकूत संपत्ति अर्जित की है और उनकी संपत्ति को जब्त किया जाना आवश्यक है।

निवारक अवरोध के बारे में तथ्य

1. निवारक अवरोध पी.आई.टी. एन.डी.पी.एस. अधिनियम 1988 के प्रावधानों के अंतर्गत किया जाता है।

2. निवारक अवरोध न्यायिक अभिरक्षा से भिन्न है।

3. विधि प्रवर्तन अभिकरणों को निवारक अवरोध जारी करवाने के लिए न्यायालय से प्रार्थना नहीं करनी पड़ती।

4. निवारक अवरोध आदेश अतिरिक्त सचिव स्तर के अधिकारी या उससे अग्रिम पंक्ति के अधिकारी द्वारा जारी किया जाता है।

5. यह विधि प्रवर्तन अभिकरणों को दी गई एक अतिरिक्त शक्ति है।

6. निवारक अवरोध अधिकतम दो वर्ष तक की अवधि के लिए किया जा सकता है।

7. प्रथमतः निवारक अवरोध आदेश धारा 3(1) के तहत केंद्रीय या राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए सक्षम प्राधिकारी द्वारा एक वर्ष के लिए किया जाता है।

8. इस अवधि को बढ़ाकर दो वर्ष धारा 10(1) के तहत केंद्र सरकार के द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए सिर्फ केंद्रीय सरकार के सक्षम प्राधिकारी द्वारा ही किया जा सकता है।

9. यदि राज्य सरकार द्वारा निवारक अवरोध आदेश जारी किया गया है तो इसकी सूचना उसे 10 दिन के भीतर केंद्र सरकार को दी जानी चाहिए।

10. निवारक अवरोध आदेश संबंधित व्यक्ति को उचित रीति से दिया जाएगा।

11. निवारक अवरोध आदेश जारी करनेवाले प्राधिकारी के लिए यह बाध्यकारी होगा कि वह उस व्यक्ति को इसके कारणों के बारे में आदेश देने के 5 दिन के भीतर सूचित करें।

12. यदि अपरिहार्य कारणों की वजह से 5 दिन के भीतर सूचित नहीं किया जा सका हो तो उसके कारणों को लेखबद्ध करते हुए 15 दिन के भीतर सूचित किया जा सकता है।

13. निवारक अवरोध आदेश, इसको जारी करने के आधार, इसके विश्वसनीय दस्तावेज प्रभावित व्यक्ति को उस भाषा में दिए जाएंगे जो उसकी समझ में आते हों।

14. निवारक अवरोध आदेश को भारत में किसी भी जगह निष्पादित किया जा सकता है।

15. इसको निष्पादन का तरीका वह होगा जो दंड प्रक्रिया संहिता में गिरफ्तारी के वारंट को निष्पादन करने के लिए विहित है।

16. व्यक्ति का निवारक अवरोध ऐसे स्थान पर किया जाएगा जहां उचित सरकार चाहेगी।

17. प्रभावित व्यक्ति के जीवन निर्वाह, साक्षात्कार एवं दूसरे व्यक्तियों से वार्तालाप, अनुशासन एवं अनुशासन भंग पर दंड आदि को उचित सरकार द्वारा निर्देशित किया जाएगा।

18. निवारक अवरोध के स्थान में परिवर्तन यानी एक राज्य से दूसरे राज्य में या एक ही राज्य में उचित सरकार द्वारा किया जा सकता है। यदि इसके लिए राज्य सरकार की सहमति आवश्यक होगी तो वह ली जाएगी।

19. यदि किसी व्यक्ति को दो या दो से अधिक आधारों पर अवरोधित किया जाता है तो उसे प्रत्येक आधार पर अलग-अलग अवरोधित समझा जाएगा। एक आधार के टूटने पर आदेश अवैध एवं प्रभावहीन नहीं होगा।

20. निवारक अवरोध आदेश सिर्फ इस आधार पर अवैध एवं प्रभावहीन नहीं होगा कि प्रभावित व्यक्ति उस न्यायिक सीमा क्षेत्र में नहीं है जहां से सक्षम प्राधिकारी ने आदेश जारी किया है।

21. यदि सक्षम प्राधिकारी के पास विश्वास करने के पर्याप्त कारण है कि जिस व्यक्ति के संबंध में निवारक अवरोध आदेश जारी किया गया है वह भगोड़ा/फरार है या इस आदेश के निष्पादन में अपने आप को छुपा रहा है तो वह धारा 8 (अ, ब) के तहत उसे फरार अपराधी घोषित कर सकती है।

22. इस संबंध में सरकार शासकीय अधिपत्र में या दैनिक मुख्य समाचार-पत्रों में सूचना प्रकाशित करेगी और उस व्यक्ति की सक्षम प्राधिकारी के समक्ष उपस्थिति की तिथि, समय एवं स्थान की सूचना भी प्रकाशित की जाएगी।

23. यदि वह व्यक्ति सक्षम प्राधिकारी के समक्ष निर्धारित तिथि, समय एवं स्थान पर उपस्थित नहीं होता तो वह एक वर्ष तक के कारावास एवं जुर्माना या दोनों के लिए दायी होगा।

24. केंद्र सरकार एवं प्रत्येक राज्य सरकार एक या अधिक सलाहकार बोर्ड का गठन करेगी जिसमें एक अध्यक्ष एवं दो अन्य सदस्य होंगे। अध्यक्ष एवं सदस्यों के लिए योग्यता एवं मापदंड केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किए जाएंगे।

25. निवारक अवरोध आदेश जारी करने के पांच सप्ताह के भीतर सरकार निवारक अवरोध आदेश को राय लेने के लिए सलाहकार बोर्ड को संदर्भित (रैफर) करेगी और यह जानेगी कि पी.आई.टी. एन.डी.पी.एस. एक्ट के तहत उस व्यक्ति को अवरोधित करने के लिए पर्याप्त कारण है या नहीं।

26. सलाहकार बोर्ड आदेश जारी होने के 11 सप्ताह के भीतर सरकार को अपनी राय देगा और यह बताएगा कि संबंधित व्यक्ति को अवरोधित करने के पर्याप्त कारण हैं या नहीं।

27. सलाहकार बोर्ड में विरोधाभासी राय आने पर बहुमत को तरजीह दी जाएगी। अवरोधित व्यक्ति को

लीगल प्रैक्टिशनर की सेवाएं लेने की अनुमति नहीं होगी, क्योंकि बोर्ड की कार्रवाई गोपनीय है। अवरोधित व्यक्ति सिर्फ बोर्ड की रिपोर्ट को जान सकेगा।

28. यदि सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट में संबंधित व्यक्ति के अवरोध के पर्याप्त कारण दर्शित किए गए हैं तो उचित सरकार इसके आधार पर निवारक अवरोध आदेश की पुष्टि कर सकेगी और आदेश को उस अवधि तक लागू करवा सकेगी जितना वह उचित समझे। यदि सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट में अपर्याप्त कारण दर्शित किए गए हैं तो आदेश खंडित किया जाएगा।

29. मादक पदार्थों के अवैध व्यापार वाले उच्च संवेदनशीलता वाले मामलों में निवारक अवरोध अवधि की सीमा आदेश जारी होने के दो वर्ष तक हो सकेगी।

30. उचित सरकार किसी भी समय निर्धारित सीमा से पूर्व आदेश में संशोधन, खंडन एवं निरस्त कर सकेगी।

31. केंद्र सरकार या राज्य सरकार निवारक अवरोध आदेश के प्रभाव में रहने के दौरान संबंधित व्यक्ति को सशर्त या बिना शर्त के विशिष्ट अवधि के लिए अस्थाई मुक्त करने के आदेश जारी करने के संबंध में सक्षम प्राधिकारी को निर्देशित कर सकती है। इसी तरह वह इस संबंध में जारी आदेश को निरस्त भी कर सकती है। मुक्त किए गए व्यक्ति का दायित्व है कि वह अवधि की समाप्ति पर पुनः निर्देशित अधिकारी के समक्ष उपस्थित हो।

32. यदि एक अवरोध आदेश को अपास्त कर दिया जाता है तो धारा 3 के तहत दूसरा आदेश उसी व्यक्ति को दिया जा सकता है।

33. यदि अस्थाई मुक्त किया गया व्यक्ति निर्देशित समय पर निर्देशित अधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं होता है तो उसे दो वर्ष तक का कारावास या जुर्माना या दोनों की सजा हो सकती है।

34. निवारक अवरोधित व्यक्ति को जमानत या जमानत बंध पत्र पर नहीं छोड़ा जा सकता है।

35. इस अधिनियम की अनुपालना में केंद्र सरकार, राज्य सरकार या अन्य अधिकारियों द्वारा सद्विश्वास में किए गए कार्यों के विरुद्ध किसी भी प्रकार का कोई वाद, वैधानिक कार्रवाई एवं अभियोग नहीं लाया जा सकता है।

निवारक अवरोध आदेश के लिए मादक पदार्थ की न्यूनतम सीमा

उन व्यक्तियों के विरुद्ध निवारक अवरोध आदेश जारी किया जा सकता है जिनको निम्न मात्रा के मादक पदार्थ के साथ रंगे हाथ पकड़ा गया हो या वह अपराध में सम्मिलित रहा हो—

अफीम - 10 किलोग्राम

मारफीन - 500 ग्राम

हेरोईन - 500 ग्राम

कोकिन - 250 ग्राम

गांजा - 50 किलोग्राम

चरस - 10 किलोग्राम

मनःप्रभावी द्रव्यों के संबंध में निवारक अवरोध जारी करने के विषय में इनके वाणिज्यिक प्रकृति एवं मात्रा को दृष्टिगत रखा जाएगा।

मादक पदार्थों के अवैध व्यापार के उच्च संवेदनशील क्षेत्र

1. भारतीय सीमा में स्थित जल क्षेत्र।

2. भारतीय सीमा में स्थित हवाई क्षेत्र।

3. मुंबई, कोलकाता, दिल्ली, चेन्नई एवं वाराणसी क्षेत्र।

4. आंध्र प्रदेश, गोवा, गुजरात, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडू, पश्चिम बंगाल, केंद्र शासित प्रदेश, दमन एवं दीव एवं पांडिचेरी के तटीय सीमा से 100 किलोमीटर दूरी तक के आंतरिक क्षेत्र।

5. भारत-पाक सीमा से लगे 100 किलोमीटर दूरी

तक के आंतरिक क्षेत्र जो गुजरात, पंजाब एवं राजस्थान में आते हैं।

6. भारत-नेपाल सीमा से लगे 100 किलोमीटर तक के वे आंतरिक क्षेत्र जो बिहार, सिक्किम, उत्तर प्रदेश व पश्चिम बंगाल में आते हैं।

7. भारत-बर्मा सीमा से लगे 100 किलोमीटर तक के वे आंतरिक क्षेत्र जो बिहार, सिक्किम, उत्तर प्रदेश व पश्चिम बंगाल में आते है।

8. भारत-बांग्लादेश सीमा से लगे 100 किलोमीटर तक के वे आंतरिक क्षेत्र जो आसाम, मेघालय तथा पश्चिम बंगाल में आते हैं।

9. भारत-भूटान सीमा से लगे 100 किलोमीटर तक के वे आंतरिक क्षेत्र जो अरुणाचल, आसाम, सिक्किम तथा पश्चिम बंगाल में आते हैं।

10. इसके अतिरिक्त केंद्र सरकार शासकीय अधिपत्र में सूचना प्रकाशित कर अन्य किसी क्षेत्र को उच्च संवेदनशील क्षेत्र घोषित कर सकती है।

निवारक अवरोध आदेश जारी करवाने में अनुसंधान अधिकारी की भूमिका

1. जिस व्यक्ति का निवारक अवरोध करना आवश्यक है उसके बारे में समस्त सूचनाएं, आपराधिक रिकार्ड एवं सुसंगत तथ्य जुटाएं।

2. सूचनाओं, आपराधिक रिकार्ड, साक्ष्य, तथ्यों एवं परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर विस्तृत प्रस्ताव तैयार करें।

3. निवारक अवरोध आदेश जारी करने के कारणों एवं आधारों का तर्कसंगत विश्लेषण कर कारणों को न्यायोचित करें।

4. प्रस्ताव को तैयार कर अपने वरिष्ठ अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत करें। वरिष्ठ अधिकारियों का दायित्व है कि वे प्रस्ताव को समय पर सक्षम प्राधिकारी के पास निवारक अवरोध आदेश जारी करने के लिए भिजवाएं।

निवारक अवरोध आदेश का जारी होना एवं अपराधी की संपति की जब्ती

1. निवारक अवरोध आदेश जारी होने के बाद अपराधी की मादक पदार्थों के अवैध व्यापार से अर्जित संपति को पी.आई.टी. एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत जब्त किया जा सकता है।

2. इसके अंतर्गत अपराधी के निकट संबंधी, सहयोगियों एवं साझेदारों की संपत्ति को भी जब्त किया जा सकता है।

3. वित्तीय अनुसंधान एवं जब्ती का तरीका वही होगा जो अधिनियम की धारा 68ए से 68वाई तक दर्शित किया गया है।

4. वित्तीय अनुसंधान एवं जब्ती आदेश जारी करने के लिए अधिनियम के अनुसार जांच अधिकारी ही अधिकृत है जिसके लिए किसी भी वरिष्ठ अधिकारी से अनुमोदन लेने की आवश्यकता नहीं है।

क्या निवारक अवरोध आदेश को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है?

मादक पदार्थों की तस्करी की रोकथाम के लिए निवारक अवरोध के किए गए प्रावधान काफी कारगर सिद्ध हुए हैं और इस प्रकार से अपराधियों पर काफी हद तक रोक लगी है। जैसे-जैसे विधि प्रवर्तन अभिकरणों एवं सरकार के द्वारा इस अधिकार का प्रयोग किया जाएंगा स्थिति में और सुधार आता जाएगा। भारतीय संविधान में सभी नागरिकों को स्वतंत्रता का मूल अधिकार दिया है। प्रत्येक व्यक्ति को कहीं भी जाने, निवास करने एवं अपनी रुचि का व्यवसाय करने की स्वतंत्रता है।

निवारक अवरोध आदेश इस प्रकार व्यक्ति के इस अधिकार को प्रतिबंधित करता है। निवारक अवरोध आदेश न्यायालय द्वारा जारी नहीं किया जाता है। इस प्रकार की पूरी संभावनाएं हैं कि सरकार इस शक्ति का अधिक प्रयोग कर सकती है। यहां यह प्रश्न उठता है कि क्या कोई व्यक्ति जिसके विरुद्ध

निवारक अवरोध आदेश जारी किया गया है, न्यायालय की शरण में जा सकता है? यहां यह स्पष्ट कर देना होगा कि निवारक अवरोध न्यायिक हिरासत से भिन्न है। निवारक अवरोध की अवधि सीमित होती है। पहली बार इसे एक वर्ष तक के लिए जारी किया जा सकता है तथा विशेष परिस्थितियों में इस दो वर्ष तक के लिए बढ़ाया जा सकता है। इसमें व्यक्ति के सिर्फ अवैध कार्यों को प्रतिबंधित किया जाता है जो कि आपराधिक न्याय व्यवस्था के अंतर्गत है। राष्ट्रहित एवं जनहित में व्यक्ति के मूल अधिकारों में कटौती की जा सकती है। अतः निवारक अवरोध आदेश को अधीनस्थ अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती है। किसी विशेष मामलों में अपराधी भारतीय सविधान के अनुच्छेद 226 के तहत राहत पाने के लिए उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय में रिटपिटिशन दाखिल कर सकता है।

लेखकों से निवेदन

यदि पुलिस विज्ञान में प्रकाशन के लिए आपके पास पुलिस, शांति-व्यवस्था, अपराध न्याय-व्यवस्था आदि पर कोई लेख है या आप लेख लिखने में सक्षम हैं तथा रुचि रखते हों तो अपने लेख यथा शीघ्र भेजें। अच्छे लेखों को प्रकाशित करने का हमारा पूरा प्रयास रहेगा। लेख टाइप किया होना चाहिए तथा इसके संबंध में फोटो, चार्ट आदि हों तो उन्हें भी साथ भेजना चाहिए। प्रकाशित होने वाले लेखों पर समुचित पारिश्रमिक की व्यवस्था है।

यदि आपने पुलिस विज्ञान से संबंधित किसी विषय पर उपयोगी पुस्तक लिखी है और आप पुलिस विज्ञान में उसे कड़ी के रूप में प्रकाशित करवाना चाहते हैं तो हमें पांडुलिपि भेजें।

यदि आप कर्मियों के कार्य को लेकर कहानी या अन्य किसी विधा में लिखने में रुचि रखते हों तो हम ऐसे साहित्य का भी स्वागत करेंगे।

यदि पुलिस विज्ञान से संबंधित किसी हिन्दीतर भाषा के उच्चस्तरीय लेख का अनुवाद किया हो और आपके पास अनुवाद प्रकाशन का कापीराइट हो अथवा उनके कापीराइट की आवश्यकता न हो तो ऐसे लेख/सामग्री भी प्रकाशनार्थ आमंत्रित हैं। प्रकाशित लेखों पर समुचित मानदेय देने की व्यवस्था है। लेख भेजते समय यह प्रमाणित करें कि लेख मौलिक/अनूदित व अप्रकाशित है तथा इस पर कोई मानदेय नहीं लिया गया है। अनूदित लेख के कापीराइट के संबंध में भी सूचित करें।

विषय आदि के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए पुलिस विज्ञान की नमूने की प्रति मंगाने के लिए संपर्क करें :—

संपादक
पुलिस विज्ञान
पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
ब्लाक-11, चौथी मंजिल
सी.जी.ओ. कम्पलैक्स, लोदी रोड
नई दिल्ली-110003
फोन : 71213215

वैब साइट — डब्लू.डब्लू.डब्लू. बीपीआरडी.एनआईसी.इन

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो

गृह मंत्रालय

पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना

पुलिस, कारागार एवं न्यायालयिक विज्ञान से संबंधित विषयों पर हिन्दी में पुस्तक लेखन के लिए रचनाएं आमंत्रित की जाती हैं। मूल प्रकाशित पुस्तकों पर 5 पुरस्कार 30,000/- रु. प्रति पुरस्कार (एक पुरस्कार महिलाओं के लिए आरक्षित है), दो पुरस्कार अनूदित मुद्रित पुस्तकों के लिए 14,000/- रु. प्रति पुरस्कार (एक पुरस्कार महिलाओं के लिए आरक्षित है)। योजना के भाग दो में 40,000/- रु. के दो पुरस्कार हैं। जिसके लिए निर्धारित विषयों पर रूपरेखाएं आमंत्रित की जाती हैं। जिसमें सामान्य वर्ग के लिए **दिए गए विषय पर आवेदक उस विषय पर लिखने वाली पुस्तक में क्या-क्या सामग्री व अध्यायों आदि का उल्लेख करते हुए 5-6 पृष्ठ की एक रूपरेखा को प्रस्तुत करना होगा** तथा महिलाओं के लिए आरक्षित विषय में भी उपरोक्त प्रक्रिया अपनाई जाएगी। रचनाएं/रूपरेखाएं भेजने की अंतिम तिथि सामान्यतः 30 सितंबर होती है। विस्तृत जानकारी के लिए कृपया संपादक (हिंदी), पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो (गृह मंत्रालय), ब्लाक सं. 11, 3/4 मंजिल, सी.जी.ओ. कंप्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से संपर्क करें।

(फैक्स : 011-24362425)

अपराध विज्ञान तथा पुलिस विज्ञान में डाक्टरेट कार्य हेतु अध्येतावृति योजना

पुलिस विज्ञान तथा अपराध विज्ञान में डाक्टरेट कार्य हेतु ब्यूरो द्वारा 6 अध्येतावृतियों के लिए भारतीय नागरिकों से आवेदन पत्र आमंत्रित किए जाते हैं। इस योजना के तहत विज्ञापन प्रति वर्ष माह में भारत के सभी प्रमुख समाचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया जाता है। इसके लिए अंतिम तिथि 30 जून होती है। इसमें अभ्यर्थी को पी.एच.डी. के लिए विश्वविद्यालय से पंजीकृत होना आवश्यक है। इसमें अभ्यर्थी को पहले 2 वर्ष 8000/- रु. तथा तीसरे वर्ष 9000/- रु. तथा इसके साथ फुटकर खर्च के लिए 10000/- रु. तथा जिस संस्था से वह पंजीकृत होगा उसे 3000/- रु. प्रदान किए जाएंगे। विस्तृत जानकारी के लिए अनुसंधान एकक, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, ब्लाक सं. 11, 3/4 मंजिल, सीजीओ कंप्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से संपर्क किया जा सकता है। पूर्ण जानकारी कार्यालय की वेब साइट www.bprd.gov.in में भी देखी जा सकती है।

पुलिस एवं कारागार संबंधी विषयों पर अनुसंधान परियोजनाएं आमंत्रित

पु.अनु.वि. ब्यूरो (गृह मंत्रालय) **पुलिस एवं कारागार** से संबंधित विभिन्न विषयों पर अनुसंधान परियोजनाओं के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए गैर सरकारी संगठनों, विश्वविद्यालयों व व्यक्तिगत शोधकर्ताओं को उनके संबंधित विश्वविद्यालयों के माध्यम से आवेदन आमंत्रित कर रहा है। आवेदन भेजने की अंतिम तिथि 30 सितंबर होती है। विस्तृत जानकारी के लिए उपनिदेशक (अनु.) एवं सहायक निदेशक (अनु.), ब्लाक सं. 11, 3/4 मंजिल, सीजीओ कंप्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 पर संपर्क कर सकते हैं। तथा ब्यूरो की www.bprd.gov.in वेब साइट से भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना के अंतर्गत ब्यूरो द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

क्र. सं.	*पुस्तक का नाम*	*लेखक का नाम*	*मूल्य*
1.	**भारतीय पुलिस का इतिहास** (अतीतकाल से मुगलकाल तक)	डा. शैलेन्द्र चतुर्वेदी	54/-
2.	**भारत में केन्द्रीय पुलिस संगठन**	श्री एच. भीष्मपाल	65/-
3.	**ग्रामीण पुलिस : समस्याएं एवं समाधान**	श्री रामलाल विवेक	65/-
4.	**ग्रामीण पुलिस : समस्याएं एवं समाधान**	श्री शंकर सरौलिया	70/-
5.	**विकासशील समाज में समसामयिक पुलिस की भूमिका**	श्री आर.एस. श्रीवास्तव	105/-
6.	**स्वातंत्र्योत्तर भारत में पुलिस की भूमिका एवं जनता का दायित्व**	डा. कृष्णमोहन माथुर	210/-
7.	**मादक पदार्थ एवं पुलिस की भूमिका**	श्री हरीश नवल	—
8.	**सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में पुलिस की भूमिका का उद्‌भव**	प्रो. मीनाक्षी स्वामी	—
9.	**समग्र न्याय-व्यवस्था में पुलिस का स्थान एवं भूमिका**	श्री ललितेश्वर	600/-
10.	**पुलिस दायित्व एवं नागरिक जागरूकता**	डा. सी. अशोकवर्धन	568/-
11.	**महिला और पुलिस**	श्रीमती अमिता जोशी	100/-
12.	**मानवाधिकार और पुलिस**	डा. जी.एस. वाजपेयी	346/-
13.	**नई आर्थिक नीति एवं अपराध**	डा. अर्चना त्रिपाठी	183/-
14.	**बाल अपराध**	डा. गिरिश्वर मिश्र	225/-
15.	**न्यायालयिक विज्ञान की नई चुनौतियां**	डा. शरद सिंह	200/-
16.	**मानवाधिकार संरक्षण एवं पुलिस**	श्री रामकृष्ण दत्त शर्मा एवं डा. सविता शर्मा	510/-
17.	**सामुदायिक पुलिस व्यवस्था**	डा. तपन चक्रवर्ती, डा. रवि अम्बष्ट	205/-
18.	**संगठित अपराध**	श्री महेन्द्र सिंह आदिल	313/-
19.	**पुलिस कार्यों का निजीकरण**	डा. शंकर सरौलिया	330/-
20.	**साइबर क्राइम**	डा. अनुपम शर्मा	450/-
21.	**अपराधों की रोकथाम और प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल**	डा. निशांत सिंह	545/-
22.	**अपराध पीड़ित महिलाओं की समस्याएं**	डा. ऋता तिवारी, डा. उपनीत लाली	775/-
23.	**वैध समस्याओं के निदान हेतु बढ़ती हिंसा प्रवृत्ति**	श्री राकेश प्रकाश	
24.	**आतंकवाद एवं जन साझेदारी**	श्री विश्वेश शर्मा	665/-
25.	**व्यावसायिक यौनकर्मियों का सुधार एवं पुनर्वास**	श्रीमती नीना लांबा	665/-
26.	**बंदियों का सुधार एवं पुनर्वास**	प्रो. दीप्ति श्रीवास्तव	665/-
27.	**नक्सलवाद और पुलिस की भूमिका**	श्री राकेश कुमार सिंह	1140/-
28.	**अपेक्षित परिवर्तन में महिलाओं की भूमिका**	डा. मंजूदेवी	992/-
29.	**पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में पुलिस की भूमिका**	डा. पंकज श्रीवास्तव एवं नीतू मिश्रा	896/-

ब्यूरो द्वारा प्रकाशित उपरोक्त सभी पुस्तकें, नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली-110054 से प्राप्त की जा सकती हैं।